खण्ड 4
समाज और राजनीति

खण्ड 4 समाज और राजनीति

परिचय

भारत एक विविधता वाला समाज है जहाँ पर बहु धार्मिक, सामाजिक, पहचान के लोग निवास करते है। ये पहचान जाति, जेन्डर आदिवासी से पहचानी जाती है। किसान, एवं मजूदरों का वर्ग भी इसमें शामिल है। इसका राजनीति के साथ संबंध भी है। राजनीति वह प्रक्रिया है जहाँ पर सभी प्रकार की पहचानों के बीच के विवाद को सुलझाया जाता है। राजनीति का संबंध निर्णय प्रक्रिया में भागेदारी निभाना भी है तथा प्रतिनिधियों के माध्यम से राजनीतिक कार्यकर्ता राजनीति में भाग लेते हैं। सभी जगह राजनीति दिखाई देती है चाहें सस्थां के अन्दर हो या बाहर। समाज में पहचान का महत्व होता है तथा पहचान का राजनीति के साथ विमर्श होता है। इस प्रकार राजनीति एवं समाज के बीच गहरा संबंध होता है। यह संबंध पारस्परिक है। समाज भी इसी प्रकार राजनीति के साथ विमर्श करता है। इस खण्ड में तीन इकाइयाँ है। इकाई संख्या 10 जाति, वर्ग एवं आदिवासी के बारे में है। इकाई 11 जेंडर से संबंधित है तथा इकाई 12 मजूदरों एवं किसानो से संबंधित है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 जाति, वर्ग एवं जनजाति*

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 जाति

10.3 वर्ग

10.4 जनजाति

- 10.4.1 अर्थ
- 10.4.2 विशेषताऐं
- 10.4.3 जनजाति एवं राजनीतिक आन्दोलन

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ सूची

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

यह इकाई भारतीय समाज के तीन महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप यह जान पायेंगे :–

- जाति, वर्ग एवं आदिवासी के बीच अर्थ एवं अंतर को समझना;
- उनकी विशेषताओं में हुए परिवर्तन को समझना; तथा
- उनका राजनीति पर पड़े प्रभाव का आकलन करना।

10.1 प्रस्तावना

यह इकाई पहचान के बारे में है। पहचान किसी भी व्यक्ति की सामाजिक समूहों के साथ संबंधों को इंगित करती है। कुछ पहचान वंशानुगत है। ऐसी पहचान की प्रकृति में बदलाव आ सकता है। लेकिन, वे सदैव बरकरार रहती है। उन्हीं में से जाति एक पहचान है। कुछ पहचान वंशानुगत नहीं है। वे आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। ऐसी पहचान को वर्ग कहते हैं। कुछ पहचान खास विशेषताओं द्वारा होती हैं जो एक खास समूह के सदस्य रखते हैं। ऐसी पहचान को जनजातियों या आदिवासियों के रूप में जाना जाता हैं। जाति, वर्ग, तथा जनजाति कुछ अन्य पहचानों जैसे धर्म, भाषा एवं क्षेत्र जैसे है। आप इस इकाई में जाति, वर्ग एवं जनजाति की पहचान के बारे में पढ़ेंगे जो कि भारत में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव के लिए बहुत महत्वूपर्ण है।

10.2 जाति

जाति का संबंध सामाजिक समूहों के संबंधों से है। यह स्थिति किसी भी व्यक्ति के जन्म के आधार पर तय होती है। जाति वंशानुगत के साथ–साथ अंतर्विवाही भी होती है। इसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति अपनी ही जाति में या जाति के लोगों के साथ विवाह संबंध कर

*प्रो. श्रीकृष्ण (रिटायर्ड), इतिहास विभाग, इंदिरा गाँधी, विश्वविद्यालय, रिवाड़ी, हरियाणा

सकता है। ये जाति की प्रमुख विशेषताऐं है। परंपरागत रूप में सभी जातियों को समाज में एक विशेष कार्य या व्यवसाय दिया गया था। जाति आधारित व्यवसाय सामाजिक वर्गीकरण को भी दर्शाता है जाति चार वर्णो में विभाजित थाः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। पूर्व में अछूत जातियों को अनुसूचित जातियों की श्रेणी में रखा गया है जिन्हें हम दलित भी कहते हैं। समय के साथ–साथ विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जाति की इन विशेषताओं में भी काफी बदलाव आया है। लेकिन इसकी दो प्रमुख विशेषताओं वंशानुगत एवं अंतर्विवाही अभी भी वैसी ही है उसमें परिवर्तन नहीं आया है। लूई डयूमों के अनुसार जो कि ''होमो हाइरारकी'' के लेखक है, उन्होंने अपनी पुस्तक में भारत में विभिन्न जातियों को श्रेणीबद्ध वर्गीकरण किया है। उनका तर्क है कि जातियों में सबसे ताकतवर जाति बाह्मण है जो कि क्षत्रियों से कहीं अधिक निर्णायक भूमिका अदा करती है। डयूमो के इस तर्क का कई लेखकों ने एवं विशेषकर निकोलास डिरक ने चुनौती दी है। ड्यूमो के तर्क की आलोचना करते हुए कहा गया कि इसने सामाजिक परिवर्तन को समझनें में पूरी तरह असफल हुआ है। भारतीय समाज में अभी तक व्यक्तिवादी प्रवृतियाँ मौजूद है। जेराल्ड बैरमन ने यह इंगित किया कि ब्राह्मणवादी वर्गीकरण सिद्धांत को सभी हिन्दुओं ने समान रूप से लागू नहीं किया। उसने ड्यूमो की भी इस बात को लेकर आलोचना की कि सत्ता एवं आर्थिक कारक जाति के इर्द–गिर्द घूमते हैं। अन्य व्यक्तियों ने भी यह संकेत दिया कि जातिगत वर्गीकरण स्थायी वर्गीकरण नहीं है तथा वह लचीला एवं विशेष संदर्भ में वर्गीकृत किया है क्योंकि विभिन्न जातियों के बीच जबरदस्त प्रतिस्पर्धा हो रही है।

निकोलास डर्क ने यह बताया कि, ब्राह्मण, एवं उनके लेख भारतीय जीवन के सामाजिक सद्भाव के केन्द्र में नहीं थे। उनके दृष्टिकोण के अनुसार सत्ता संबंध एवं संसाधनों तथा व्यक्तियों पर नियंत्रण ज्यादा महत्वपूर्ण थे। ब्राह्मण केवल कर्मकांड के विशेषज्ञ थे तथा वे ताकतवर शासक परिवार के अधीनस्थ थे। जाति आधारित ब्राह्ममणवादी प्रतिमान ब्रिटिश की समझ थी। लेकिन जाति ने भारतीय समाज सुधार में बड़ी भूमिका निभाई थी। यह ब्रिटिश कल्पना की उपज नहीं थी। लूई ड्यूमो से असहमत होते हुए समाजशास्त्री दीपांकर गुप्ता ने यह तर्क दिया कि यद्यपि विभिन्न जातियों को एक निश्चित वर्गीकरण स्थान में रखा गया है, लेकिन फिर भी ये विशेष जाति पहचान के रूप में उभर कर सामने आयी है। राज्य की नीतियों, समाज कल्याण योजना, विशेषकर वंचित समूहों के कल्याण के लिये जाति आधारित छूआछूत पर संविधानिक प्रतिबंध में प्रावधानों को लागू करना, सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण देना, राजनीतिक संस्थाओं में आरक्षण देना, भूमि सुधार, इत्यादि ने जाति आधारित संबंधों को कमजोर किया है। विशेषकर, शुद्धता एवं अशुद्धता के सिद्धांत का प्रभाव अधिक नहीं है जैसा कि पहले था। इस घटनाक्रम को रजनी कोठारी एवं डी. एल सेठ ने जाति के निरपेक्षीकरण का नाम दिया है। भारतीय लोकतंत्र में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सार्वभौम वयस्क मताधिकार के लागू होने के बाद भारत के सभी नागरिकों को चुनावी लोकतंत्र में भाग लेने का अवसर मिला। जाति राजनीतिक एकगुटता लाने के लिए महत्वूपर्ण हथियार बन गया। जातियों के आधार पर संगठन बनाये जाने लगे। रूडोल्फ एवं रूडोल्फ के अनुसार जाति संगठनों की भूमिका लोगों को एकजुट करने में महत्वपूर्ण होने लगी, एवं इससे उनके लोकतांत्रिक अधिकारों को भी लेने का मौका मिला। क्रिस्टोफ जैफरलो एवं संजय कुमार ने अपनी पुस्तक ''राइज ऑफ प्लेबियन'' में यह तर्क दिया कि विभिन्न राज्यों में दलितों एवं ओ.बी.सी. की भागेदारी बढ़ी है, खासकर 20वीं सदी के आखिरी दशकों में। यह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के समय में एक प्रकार से जाति की प्रकृति में परिवर्तन का परिणाम है। जाति आधारित संगठनों के अलावा कई राजनीतिक दलों ने भी जाति के मुद्दों को उठाया।

इन राजनीतिक दलों का लक्ष्य कुछ खास जातियों को मजबूत बनाना था। उत्तर प्रदेश में, बहुजन समाज पार्टी का प्रयास था दलितों एवं पिछड़ों को सशक्त बनाना। इसी प्रकार

1970–80 में, चरणसिंह द्वारा भारतीय क्रांति दल या लोकदल ने उत्तर भारत में पिछड़ों को एकजुट किया। तमिलनाडू में डी.एम.के. एवं ए.आई.ए.डी.एम. के ने पिछड़े वगों एवं द्रविडों को एकजुट किया। 1980 तक काँग्रेस का समर्थन का आधार भी पिछड़े एवं दलित वर्ग ही थे तथा अभी 2014 से बी.जे.पी. का आधार भी ये ही जातियाँ है। सरकार की नीतियाँ भी इन्हीं जातियों के मद्देनजर रखकर बनाई जाती है। इससे विभिन्न जातियों का समर्थन प्राप्त करने में मदद मिलती है।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जाति की प्रमुख विशेषताऐं कौनसी है तथा उनमें किस प्रकार का परिवर्तन देखने को मिला है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीति में जाति की भूमिका की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

10.3 वर्ग

वर्ग जाति से अलग है। जाति की तरह वर्ग वंशानुगत नहीं है। यह किसी धर्म से भी प्रतिबंधित नहीं है। वर्ग किसी भी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति से संबंधित है। वर्ग किसी भी व्यक्ति के आर्थिक पहलू के साथ संबंध से जुड़ा हुआ है। यह किसी समूह के आर्थिक संसाधनों, संसाधनों पर नियंत्रण, तथा उनका वितरण से जुड़ा हुआ है। यद्यपि वर्ग आर्थिक श्रेणी है, लेकिन इसका संबंध गैर–आर्थिक पहलूओं, जैसे जाति, जनजाति या धर्म से भी है। मार्क्सवादी भाषा में, दो ही वर्ग होते है : गरीब एवं अमीर। जो अमीर वर्ग है वह संसाधनों का मालिक है तथा गरीब वर्ग संसाधनों से वंचित है। उनके पास केवल श्रम शक्ति है। पूँजीवादी समाज में जिनके पास संसाधन है उन्हें बुर्जुआ वर्ग कहा जाता है। वे स्वयं कार्य नहीं करते है बल्कि उनके उद्यमों में मजदूर या सर्वहारा वर्ग काम करते हैं। बुर्जुआ या पूंजीपति वर्ग मजदूरों द्वारा किये गये श्रम से मुनाफा या लाभ कमाते हैं। इस प्रकार से पूँजीवादी समाज में दो ही वर्ग मौजूद है पूँजीपति या बुर्जुआ वर्ग तथा दूसरा श्रमिक या मजदूर वर्ग। हरीश दामोदरन ने अपनी पुस्तक ''भारत के नये पूंजीपति वर्ग'' में पूँजीपतियों के जाति आधारित पृष्ठभूमि का खुलासा किया है और कहा कि पिछले कुछ सदियों से इस वर्ग में वृद्धि हुई है बजाय स्वतंत्रता प्राप्ति के समय के पश्चात्। भारत में उद्योग, अर्थव्यवस्था

का बहुत छोटा हिस्सा है कृषि की तुलना में इसलिए औद्योगिक और मजूदर वर्ग भी बहुत छोटा वर्ग है। रूडोल्फ एवं रूडोल्फ ने अपनी पुस्तक ''परस्यूट ऑफ लक्ष्मी'' में ये रेखांकित किया कि मजदूर वर्ग बहुत छोटा वर्ग है भारत में। वर्गों को कृषि के क्षेत्र में भी देखा जा सकता है। लेकिन कृषि क्षेत्र में वर्गों का गठन एवं संगठन विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, कृषक वर्ग का वर्णन इस प्रकार से हैं। जमींदार एवं काश्तकार वर्ग, कुलक या अमीर किसान, मध्यम किसान एवं कृषि मजदूर वर्ग, छोटे एवं मझले किसान, तथा स्वतंत्र मजदूर वर्ग। जमींदार एवं काश्तकार सामान्यतया भारत में भूमि सुधारों के लागू होने से पहले मौजूद थे। लेकिन, वे पूरी तरह से अभी भी राज्यों में मौजूद है, वे गायब नहीं हुए है। देश के कई भागों में, नये वर्गों का उदय हुआ है भूमि सुधार के बाद, जिसने जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया है। ये वर्ग अमीर किसान, कुलक तथा मध्यम किसान के रूप में जाने जाते हैं। जिन क्षेत्रों में हरित क्रांति देखने को मिली है, उनमें ये वर्ग फसलों की उगाई में लिप्त पाये गये। इन क्षेत्रों में खेतीहर मजदूर भी उभर कर सामने आये जो कि जमींदारों की जमीन पर काम करते थे। इसके अलावा ऐसे वर्ग भी है जिनके पास बहुत कम खेती की जमीन भी है। यह जमीन उनके परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं है। वे अपनी जमीन पर काम करने के अलावा दूसरों की जमीन पर भी काम करते हैं। ये छोटे एवं मझले किसान होते हैं। इन वर्गों के अलावा, कुछ ऐसे सामाजिक समूह भी हैं जो कि किसी निश्चित व्यवसाय में नहीं है। वे जो भी कार्य उपलब्ध होता है उसको करते हैं। उनके पास खेती की जमीन भी नहीं होती तथा जीवन यापन के साधन भी नहीं होते।

अपनी पुस्तक ''फूटलूज लेबर'' में जन ब्रीमन से इन वर्गों को 'फूटलूज लेबर' यानी स्वतंत्र मजदूर कहा है। वर्गों का जातियों के साथ नजदीकी संबंध है। यद्यपि, सभी वर्ग सभी जातियों में पाये जाते है, लेकिन दलित एवं निम्न वर्ग सबसे गरीब है जो कि उच्च जातियों से अधिक है। अमीर किसान या मध्यम किसान ज्यादातर उच्च जातियों से होते है जैसे, जाट, यादव, मराठा, रेड्डी, कामा, वेकलिगा, एवं लिंगायत। जबकि खेतीहर मजदूर, तथा छोटे एवं मझले किसान ज्यादातर दलित या निम्न वर्ग के होते है। इसके अलावा उद्योग एवं कृषि तथा सेवा क्षेत्र में भी वर्ग होते हैं, जिनमें कई प्रकार के मध्यम वर्ग होते है। उनमें प्रोफेशनल एवं सेमी प्रोफेशनल भी शामिल है जैसे, डॉक्टर, वकील, या पत्रकार/मध्यम वर्ग सामान्यता वह वर्ग है जो कि नौकरी पेशा है चाहे सरकारी हो या निजी। मध्यम वर्ग सजातीय वर्ग नहीं है। वे पूरी तरह से आर्थिक स्थिति एवं लोकसेवा पर निर्भर होते हैं। उनमें मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग या उच्च मध्यम वर्ग भी शामिल है।

अभ्यास प्रश्न 2

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जाति एवं वर्ग में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में नये पूँजीपति वर्ग की क्या रचना है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) फूटलूज लेबर (स्वतंत्र मजदूर) क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

10.4 जनजाति

10.4.1 अर्थ

जनजाति वर्ग के अंदर वे लोग आते हैं जिनकी अन्य जातियों से अलग पहचान हो। जैसा कि आपने 10.2 में पढ़ा है जाति मुख्य रूप से हिन्दू समुदाय के साथ जुड़ी हुई है। उनका सामाजिक स्तर एवं व्यवसाय उनकी वैवाहिक स्थिति एवं जन्म के आधार पर निर्धारित की जाती है। जबकि जनजाति की विशेषताएं जन्म के आधार पर तय नहीं होती। जनजाति विभिन्न धर्मों से जुड़ी हुई है। पारसी, मुस्लिम, बौद्ध इत्यादि। कुछ विद्वान जनजातियों को स्वदेशी मानते है। झारखंड, छत्तीसगढ़ एवं असम के कुछ वर्ग आदिवासी माने जाते हैं। भारत में जनजाति समुदाय के लोगों के साथ काफी अत्याचार एवं उत्पीड़न होता आ रहा है। भारत में 19वीं सदी में जनजाति शब्द का प्रयोग ब्रिटिश काल में हुआ था। इसका प्रयोग विभिन्न समुदायों को अलग करके देखना था जो कि जाति की परिभाषा में नहीं आते थे। अधिकारिक तौर पर जनजाति की अवधारणा को भारत शासन अधिनियम, 1935 में परिभाषित किया गया है। भारत में, खासतौर पर उत्तरी पूर्व राज्यों में जनजाति समुदाय के लोग रहते है। इसके अलावा भारत के अन्य राज्यों जैसे झारखंड, अंडमान एवं निकोबार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तेलगांना, गुजरात एवं राजस्थान में भी जनजातियाँ पायी जाती है। संविधान के अनु. 341 के अनुसार, भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वे ऐसे समुदाय को जनजाति का दर्जा दे सकते है जो कि संविधान के अनुसार हो। संसद किसी भी जाति को जनजाति वर्ग में शामिल कर सकती है या उसे निकाल सकती है।

भारत के संविधान में अनुसूचित जनजाति के कल्याण के लिए कई प्रावधान है। अनु. 342 में अनुसूचित जनजाति के कल्याण के लिए प्रशासनिक प्रावधान दिये गये है। राज्य को यह निर्देश दिया गया है, कि वह जनजातियों को आरक्षण की व्यवस्था करे, तथा संसद एवं विधानसभाओं में भी उनके लिये आरक्षण दिया जाये। ये प्रावधान अनु. 16, 46, 335, 330 एवं 332 के अंतर्गत दिये गये है। संविधान आदिवासी लोगों की भाषा, बोली एवं संस्कृति की रक्षा करने को भी सुनिश्चित करता है। संविधान की छठी अनुसूची में स्वायत्त जिला

परिषद के गठन का भी प्रावधान है, विशेषकर उत्तर–पूर्वी राज्यों एवं पहाड़ी इलाकों में। पाँचवी अनुसूची के अंतर्गत भारत के समतल इलाकों में आदिवासी सलाहकार परिषद के गठन का प्रावधान दिया गया है। आदिवासी सलाहकार परिषद के अंदर सदस्य अनुसूचित जनजाति के होते हैं। इस परिषद का प्रमुख कार्य है सरकार को आदिवासी लोगों के कल्याण के लिए सलाह देगा। जबकि स्वायत्त जिला परिषद कानूनी और प्रशासनिक स्वायत्त प्रदान करती है। इस प्रकार बहुत मजबूत संरचना स्थापित की गयी है। संविधान के अंदर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान का पूरा एजेन्डा दिया गया है।

10.4.2 विशेषताएं

जनजाति वर्गों की कुछ विशेषताओं की पहचान की गई है। यहाँ यह बात नोट करने की है कि, जनजाति समाज परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, इसलिए उनकी विशेषताओं में भी प्रभाव दिखाई दे रहा है।

i) परंपरागत तौर पर जनजातियों पहाड़ी इलाकों एवं जंगलों में पायी जाती है। यहाँ सामान्यतया इन इलाकों में मूलभूत सुविधाओं की कमी पायी जाती है जैसे, सड़क, विद्यालय, स्वास्थ्य सुविधाऐं इत्यादि।

ii) इन इलाकों में खेती मुख्यतया पारिवारिक परिश्रम का हिस्सा है। जनजाति बहुत इलाकों में खेती के तौर–तरीके भी बदल रहे हैं, अब लोगों के पास अपने पशु, मछलीपालन, शिकार, खदान इत्यादि के कार्य है।

iii) वे खेती के परंपरागत साधनों का इस्तेमाल करते हैं।

iv) जनजातियों के पास, विकसित बाजार नहीं है ताकि वह अपना माल बेच सके।

v) महिलाएं इन इलाकों में गैर–जनजाति समाज की महिलाओं से ज्यादा समानता पाती हैं।

vi) जनजाति समुदाय का मुखिया अपने लोगों के हितों की रक्षा के लिए निर्णायक भूमिका अदा करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल के दौरान जनजाति समुदायों, में बहुत परिवर्तन आया है। लेकिन ये परिवर्तन सभी क्षेत्रों में समान रूप से प्रभावित नहीं हुए है। अभी भी आर्थिक एवं शैक्षिक असमानताऐं इन क्षेत्रों में व्याप्त है। ये परिवर्तन मुख्यरूप से राज्य एवं केन्द्र सरकार की नीतियों के कारण आये है, क्योंकि इन सरकारों ने संविधान के अनुसार विशेष प्रावधान किये है।

छठी एवं पाँचवी अनुसूची पहाड़ी इलाकों एवं समतल क्षेत्रों के आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों एवं जनजातिय हितों की रक्षा के लिये बनाई गयी है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण तथा कल्याणकारी नीतियों ने जनजातीयों का समाज परिवर्तन किया है। इसके परिणामस्वरूप भारत में विभिन्न जनजातिय वर्गों में नये वर्गों का उदय हुआ है। इन वर्गों में ज्यादातर मध्यम वर्ग है जैसे शिक्षक, इंजीनियर, डॉक्टर, व्यापारी, राजनेता, इत्यादि। इनमें से कुछ जनजातिय समाज के कल्याण में योगदान दे रहे हैं। नये वर्गों के उदय के अलावा, बाजार के बढ़ने से जनजातिय अर्थव्यवस्था को भी नुकसान पहुँचा है। इससे पर्यावरण को भी नुकसान हुआ है एवं प्राकृतिक संसाधनों को भी क्षति पहुँची है। सदियों से जनजातीय क्षेत्रों का शोषण होता रहा है इससे उनको वंचित वर्ग माना जाता है।

10.4.3 जनजाति एवं राजनीतिक आंदोलन

भारत में जनजातियाँ, विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक आंदोलन कर रही है, विशेषकर उनके खिलाफ हो रहें उत्पीड़न एवं शोषण के विरूद्ध ये जातियाँ समय–समय पर आंदोलन का सहारा लेती है। 19वीं सदी के दौरान, आदिवासी औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध कई विद्रोह में शामिल थे तथा उनके जीवन, संस्कृति, एवं आदिवासी समुदाय के बीच हस्तक्षेप के विरूद्ध भी विद्रोह में शामिल थे। इसके परिणामस्वरूप आदिवासी इलाकों में प्रशासनिक व्यवस्था का सृजन किया गया जो कि सामान्य भारतीय प्रशासन से अलग थी। कई प्रकार के विधायी एवं कार्यकारी कदम उठाये गये जिनका प्रमुख लक्ष्य था आदिवासी लोगों के हितों की रक्षा एवं उनके कल्याण के कार्य करना। 1874 से आदिवासी इलाकों में जनजाति वर्ग की जनसंख्या बहुमत में है। इसका प्रशासन की अनुसूचित जिला इकाई के द्वारा संचालित किया जाता है। इस कानून के मुताबिक, सरकार को कुछ कानूनों को अनुसूचित इलाकों में लागू करने की जरूरत थी ये कानून भारत के अन्य इलाकों से अलग थे। ये प्रावधान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जारी थे हालांकि इनकी जड़ औपनिवेशिक शासन में थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में, जनजातियाँ अपने पिछड़ेपन को समाप्त करने एवं राजनीति में भाग लेने के लिए आंदोलनों में शामिल रही है। आंदोलनों के जरिये, वे राजनीतिक एवं क्षेत्रीय स्वायत्ता चाहती है, एवं शासन की इकाइयों के बीच संबंधों को पुनः व्यवस्थित करना चाहती है अर्थात् स्वशासन राज्य एवं केन्द्र के बीच संबंध बनाना चाहती है। इन संबंधों के पुनः व्यवस्थित करने में जिला, क्षेत्रीय स्वायत्ता चाहती है एवं राज्य के मध्य नये राज्य के सृजन या एक नया, राज्य बनाने की माँग रखती है। कुछ जनजातीय समूह विद्रोह में भी शामिल है एवं उनको इसका जनसमर्थन भी मिलता है तथा प्रायः ये हिंसा में भी तबदील हो जाता है। इनमें कुछ उदाहरण उत्तर–पूर्वी राज्यों के आंदोलन जैसे नागा आंदोलन, मिज़ों आंदोलन तथा बोडो आंदोलन शामिल है।

अभ्यास प्रश्न 3

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जनजाति क्या है? यह जाति से किस प्रकार भिन्न है।

.....

.....

.....

.....

.....

2) जनजाति समाज की क्या विशेषताऐं हैं?

.....

.....

.....

.....

3) आदिवासी कल्याण के लिये संविधान के विशेष प्रावधान क्या है।

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 सारांश

इस इकाई में आपने तीन विभिन्न पहचान समूहों जैसे जाति, वर्ग एवं जनजाति के बारे में पढ़ा है। जाति एक वंशानुगत एवं वैवाहिक वर्ग है। यद्यपि जाति की प्रकृति में बहुत बदलाव आया है, लेकिन फिर भी इसकी पहचान बरकरार है। जाति–आधारित वर्गीकरण, अभी भी कायम है। लेकिन विभिन्न जातियाँ एक इकाई के रूप में उभर कर सामने आई है। जाति के आधार संगठनों का गठन किया गया है। इनकी भारतीय राजनीति में निर्णायक भूमिका रही है। पिछले कुछ वर्षों में निम्न जातियों का लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी बढ़ी है। वर्ग किसी व्यक्ति या समूह के संसाधनों के वितरण से संबंध है। जाति की भांति वर्ग कोई स्थायी नहीं है। किसी भी व्यक्ति का वर्ग कभी भी बदल सकता है जब संसाधनों का वितरण का संबंध बदल जाये।

यहाँ अमीर किसान, कुलक, मध्यम किसान और खेतीहर मजदूर, छोटे एवं मझले किसान, फूटलूज किसान (स्वतंत्र किसान) कृषि क्षेत्र में, पूँजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग औद्योगिक क्षेत्र में तथा मध्यम वर्गीय सरकारी कर्मचारी या व्यावसायिक वर्ग है। जनजाति की पहचान कुछ विशेषताओं के आधार पर की जाती है। उनकी नजदीकी प्राकृतिक संसाधनों जैसे जंगल से है, महिलाओं की स्थिति गैर–जनजातीय समाज से भिन्न है, जनजातीय मुखिया की भूमिका उनके समुदाय के कार्यों में अहम होती है, ये प्रमुखतया कृषि के लिये परंपरागत औजारों का प्रयोग करता हैं। लेकिन इन विशेषताओं में काफी परिवर्तन देखने को मिला है।

10.6 संदर्भ सूची

कोठारी, रजनी, (1970), *कास्ट इन इंडिया*, हैदराबाद, ब्लैकस्वान.

गुप्ता, दीपाकर, (2000), *इन्टेरोगेटिंग कास्ट : अंडरस्टैडिंग हाइरारकी एंड डिफ्रेंस इन इंडियन सोसाइटी*, पेंगविन.

जैफरलो, क्रिस्टोफर एएन कुमार, संजय (संकलित), *राइज ऑफ प्लेबियन? चेंजिंग फेस ऑफ द इंडियन लेगिस्लेटिव असेंम्बली*, नई दिल्ली, राउटलेज।

दामोदरन, हरीश, (2008), *इंडिया'स न्यू कैपिटलिस्टस : कास्ट, लीजनेस, एंड इंडस्ट्री इन ए मॉर्डन इंडिया*, रिशिकेश, परमानेंट ब्लैक.

ब्रीमन, जन, (1966), *फूटलूज लेबर वर्किंग इन इंडिया'स इनफोर्मल इकॉनमी*, कैम्ब्रीज, कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस.

रूडोल्फ एण्ड रूडोल्फ, (1967), *मोडरनिटी ऑफ ट्रेडिसनः पॉलिटिकल डेवेलेपमेंट इन इंडिया*, ओरियंट लांगमेन.

शाह, घनस्याम, (2001), *सोशल मूवमेंटस एंड द स्टेट*, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन.

सिंह, के. एस. (1982, 1983), (संकलित) *ट्राइबल मूवमेंटस इन इंडिया*, खंड I & II, मनोहर.

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) जाति एक सामाजिक समूह है जहाँ पर किसी व्यक्ति की स्थिति जन्म के आधार पर निर्धारित होती है। यह वंशानुगत व्यवस्था है। जाति अंतर्विवाही व्यवस्था को अपनाती है। परंपरागत रूप में जातियों की पहचान विशेष व्यवसाय के साथ की जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में राज्य की नीतियों एवं भूमि सुधारों, आरक्षण इत्यादि ने जाति आधारित संबंधों को परिवर्तित किया है।

2) 1950 में सार्वभौम मताधिकार के लागू होने के बाद, सभी जातियों को समान अवसर मिला राजनीति में भाग लेने का। उन्होंने अपने संगठनों का गठन किया जिसने सभी जातियों को सशक्त बनाने में मदद की, खासकर दलित एवं पिछड़े वर्गों को। विशेषतया 1990 से जनतांत्रिक राजनीति में, दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों की सहभागिता बढ़ी है।

अभ्यास प्रश्न – 2

1) जाति एक वंशानुगत और अंतर्विवाही वर्ग है। जाति किसी समूह या व्यक्ति के साथ संसाधनों के वितरण के संबंध को इंगित करती है।

2) नये पूँजीपति वर्ग की रचना पुराने पूंजीपति वर्ग से अलग है। पुराने की अपेक्षा नये पूंजीपति वर्ग की रचना ज्यादा व्यापक है।

3) फूटलूज लेबर एक सामाजिक समूह है जिसके पास अपने जीवन यापन के लिए स्थायी साधन नहीं है। वे जो भी कार्य मिलता है उसे करते है। उनके पास न जमीन होती है और न ही अन्य जीवन यापन के साधन।

अभ्यास प्रश्न – 3

1) जनजाति एक ऐसा समूह जो कि विशेष पहचान रखता है, जैसे कि संस्कृति, भाषा, नस्ल, धर्म, इतिहास इत्यादि। जनजातियों की कुछ विशेषताऐं होती है जैसे कि वे मुख्य धारा से अलग निवास स्थान होता है, महिलाओं में समानता, मुखिया की भूमिका, इत्यादि। जनजाति जाति से अलग होती है। जाति मुख्य रूप से हिन्दु समाज की विशेषता है। जाति की पहचान धर्म विशेष नहीं होती। जनजातियाँ अलग धर्मों से होती है। जैसे मुस्लिम, बौद्ध या फारसी।

2) जनजातियों की विशेषताएं परिवर्तित हो रही है। लेकिन उनकी सामान्य विशेषताऐं इस प्रकार है :– जनजातियाँ मुख्य तौर पर पहाड़ी इलाकों एवं जंगलों में पायी जाती हैं यहाँ की कृषि व्यवस्था मुख्य रूप से पारिवारिक श्रम पर आधारित है तथा वे कृषि के परंपरागत साधनों का इस्तेमाल करते है। उनका प्रमुख व्यवसाय पशु–पालन, मछली पालन, शिकार, इत्यादि है। तथा अब वे निर्माण क्षेत्र, खदान इत्यादि में भी पाये जाते है। उनके पास बाजार के साधन उपलब्ध नहीं है।

3) अनुच्छेद 16, 46 एवं 335 / संविधान जनजातीय भाषा, बोली एवं संस्कृति की रक्षा को भी सुनिश्चित करता है (अनु. 29) पाँचवी एवं छठी अनुसूची संविधान की यह सुनिश्चित करती है कि जनजाति लोगों की संस्कृति एवं स्वायत्ता की रक्षा की जाये।

इकाई 11 जेन्डर*

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 जेन्डर एवं मुद्दे

11.3 जेन्डर एवं विकास

11.4 जेन्डर और आंदोलन

- 11.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 11.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का काल

11.5 एल.जी.बी.टी.क्यू. या ट्रांसजेन्डर

11.6 सारांश

11.7 संदर्भ सूची

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

यह इकाई भारतीय समाज में जेन्डर के मुद्दों से संबंधित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान पायेंगे :

- जेन्डर एवं लिंग के बीच अंतर करना;
- भारतीय समाज में पुरूष, महिला एवं ट्रांसजेन्डर की स्थिति का वर्णन करना;
- जेन्डर प्रश्न से संबंधित मुद्दों की पहचान करना; और
- भारत में जेन्डर आधारित आंदोलन की प्रकृति का विश्लेषण करना।

11.1 प्रस्तावना

समाज में लोगों की पहचान भाषा, धर्म, जाति, लिंग, जेन्डर, आदिवासी इत्यादि के आधार पर की जाती है। जैसा कि यह इकाई जेन्डर के बारे में है, अतः जेन्डर के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है तथा यह लिंग से किस प्रकार भिन्न है यह भी जानना आवश्यक है। सामान्यतः लोग जेन्डर एवं लिंग को एक जैसा मानते है। लेकिन यह सही नहीं है। यहाँ लिंग एवं जेन्डर में अंतर है। लिंग का संबंध किसी व्यक्ति की जैविक पहचान है, जबकि जेण्डर का संबंध किसी समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं अन्य कारकों का निर्धारण है। अर्थात् पुरूषों एवं महिलाओं की समाज में वास्तविक स्थिति क्योंकि इन तीनों वर्गों की स्थिति इन्हीं कारकों के आधार पर निर्धारित होती है क्योंकि पुरूष, महिला एवं ट्रांसजेन्डर तीनों अलग–अलग परिस्थितियों में विकसित होते हैं, वे समाज में एक जैसी रूतबा नहीं रखते। क्योंकि समाज में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक असमानताएं व्याप्त हैं जिसकी वजह से ये तीनों वर्ग एक जैसे नहीं है। हमारे समाज में पुरूषों की स्थिति महिलाओं एवं ट्रांसजेन्डर की तुलना में उच्च है। इसका उदाहरण हमें इनकी संपत्ति अवसर, सामाजिक व्यवहार से मिलता है। पुरूषों को महिलाओं एवं ट्रांसजेन्डरों की तुलना में

*इकाई 24, बी.पी.एस.ई. 212, जयंती आलम द्वारा लिखित तथा इकाई 20, एम.पी.एस.–003 राकेष बटबयाल द्वारा लिखित से सकंलित

अधिक स्वतंत्रता मिली है। उनकी यह असमान स्थिति समाज में जेन्डर के संबंध में अलग है जिस समाज में पुरूष महिलाओं से अधिक ताकत रखते हैं उसे पुरूष–प्रधान या पितृसत्तात्मक समाज कहते हैं, तथा जहां महिलाऐं अधिक ताकत रखती है उसे मातृसत्तात्मक समाज कहते हैं। ये सब समाज मूल्य व्यवस्था का प्रतिबिम्ब है। पितृसत्तात्मक मूल्य समाज में महिलाओं को समान नहीं मानते हैं। केट मिलेट ने अपनी पुस्तक लिंगिय राजनीति (1970) में यह समझाने की कोशिश की है कि किस प्रकार शक्ति एवं पितृसत्ता जेन्डर के संबंधों को निर्धारित करते हैं। केट मिलेट पर नारीवादी विचारक सिमोन दे बोउवर की किताब, ''द सेकन्ड लिंग'' (1949) का प्रभाव अधिक पड़ा था। भारत में तीन आदिवासी जातियों खासी, गारो, तथा जेन्तिया मेघालय में, नायर केरल में एवं कुछ जनजातियों अंडमान एवं निकोबार को छोड़कर सभी जगह पितृसत्ता अस्तित्व में है। इन जनजातियों में मातृ सत्ता की व्यवस्था अस्तित्व में हैं। लेकिन जैसा कि टिपलुट नोंगरी एक समाज शास्त्री ने यह रेखांकित किया कि खासी के संबंध में यह कहा जाता है कि मातृसत्ता व्यवस्था में भी महिलाओं के साथ एक जैसा व्यवहार नहीं किया जाता है।

11.2 जेन्डर एवं मुद्दे

1980 से महिला आंदोलन बड़ी तेज गति से आगे बढ़ा जिसने उनके मुद्दों को उठाया। लेकिन ये आंदोलन सभी जगह समान रूप से नहीं हुए। जैसा कि आपने पढ़ा होगा जेन्डर से संबंधित मुद्दे महिलाओं, पुरूषों एवं ट्रांसजेन्डरों की समस्या नहीं है। ये सब का प्रभावित करते हैं। उनका समाधान भी सामूहिक प्रयास से संभव है। फिर भी जेन्डर की स्थिति महिलाओं, पुरूषों एवं ट्रांसजेन्डर की स्थिति पर निर्धारित होती है। केवल महिलाऐं ही निम्न स्थिति में होती है। उनके उत्थान एवं सशक्तिकरण के लिए कई चुनौतियां सामने होती है। कई प्रकार के जेन्डर आधारित भेदभावों पर कानूनन पाबंदी लगा दी गयी है, तथा समाज का कोई गर्व इनको मान्यता नहीं देता है। बावजूद इसके, कुछ भेदभाव अभी भी जारी है। ये परिवार में, सार्वजनिक स्थानों पर एवं कार्य स्थल पर अभी भी जारी है। उनमें कुछ उदाहरण इस प्रकार है :– बलात्कार, घरेलू हिंसा, पुत्रियों के साथ भेदभाव, दहेज, दुल्हन को जलाना, बच्चे का लिंग पता करना, तथा समाज में बाल विवाह, कुछ परंपरागत जातियों द्वारा भेदभाव करना एवं पंचायतों द्वारा उत्पीड़न जैसे खाप पंचायत इत्यादि कुछ ऐसे उदाहरण है जो अभी भी महिलाओं से जुड़े हुए है। इसके अलावा महिलाओं के साथ पुरूषों के बराबर मजदूरी देने में भी भेदभाव किया जाता है।

11.3 जेन्डर एवं विकास

जेन्डर पर आधारित असमानताऐं मुख्य रूप से सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं के कारण है, तथा संस्थाओं में महिलाओं एवं ट्रांसजेन्डरों के प्रतिनिधित्व की कमी भी इसका मुख्य कारण है। यह बात सही है यदि महिलाओं को शिक्षित बनाया जाये, उन्हें आर्थिक रूप से मजबूत किया जाये तथा उनको राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिया जाये तो उनके लिए समानता प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि आर्थिक स्वतंत्रता जेन्डर आधारित भेदभाव को कम करने में मदद करता है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। इसके लिये हमें पितृसत्तात्मक मूल्यों में भी बदलाव करना पड़ेगा। अर्थात पुरूषों, महिलाओं एवं ट्रांसजेन्डरों को एक साथ समान रूप से व्यवहार किया जायेगा। अर्थात ये सब मानवीय प्राणी है। इस प्रकार जेंडर आधारित भेदभाव मानव विकास के स्तर पर भी निर्भर है। मानव विकास का अर्थ है मानव की आर्थिक स्वतंत्रता या उन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुएं एवं सुविधाऐं प्राप्त होना, सही शिक्षा ग्रहण करना, अच्छा स्वास्थ्य होना तथा एक मानवीय प्राणी के रूप में उसे सम्मान मिलना। यहाँ तक कि नौकरी शिक्षा तथा स्वास्थ्य भी जेंडर आधारित असमानताओं को दूर करने के

महत्वपूर्ण कारक हैं। ये पर्याप्त नहीं है यदि इनके साथ आत्म–सम्मान तथा गौरव का प्रावधान न हो। ये तभी संभव है जब पितृसत्ता के मूल्यों में बदलाव हो। अमर्त्य सेन ने *''विकास एवं स्वतंत्रता''* (2000) में यह दलील दी कि विकास का मुख्य आधार स्वास्थ्य, शिक्षा है जो कि मनुष्य को स्वतंत्रता प्रदान करने में सहायक है।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जेन्डर एवं लिंग में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) जेन्डर भेदभाव के प्रमुख मुद्दे क्या–क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) जेन्डर एवं विकास के बीच क्या संबंध है?

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 जेन्डर और आंदोलन

11.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में महिला आन्दोलन की शुरूआत स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हुई थी। ये आंदोलन महिलाओं से जुड़े सभी मुद्दों को उठा रहे थे। इनमें से कुछ मुद्दे समकालीन भारत में महिला आंदोलन का प्रमुख हिस्सा है। कुछ समाज सुधारकों ने महिलाओं के अधिकार एवं उनका सम्मान दिलाने के लिए समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने में बड़ी भूमिका निभाई। समकालीन भारत में जेन्डर आधारित भेदभाव को समाप्त करने की शुरूआत स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले ही शुरू हुई थी। 19वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में राजा राम मोहन रॉय एवं विद्यालंकार ने सती प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई। 1817 में, पंडित मृत्युजंय

विद्यालंकार ने यह घोषणा की कि सती को 'शास्त्रों से मान्यता नहीं मिली है। इसी प्रकार 1850 में, पंडित ईश्वर चंद विद्यासागर ने यह दलील दी कि शास्त्र कभी भी विधवा का पुनर्विवाह का विरोधी नहीं है। एक साल बाद गर्वनर विलियम बेन्टिक ने बंगाल प्रांत में सती प्रथा पर पांबदी लगा दी। लगभग 11 वर्ष बाद भारत के अन्य भागों में भी सती प्रथा पर पाबंदी लगा दी एवं 1929 में सती प्रथा निरोधक कानून भी पारित किया गया। विधवा विवाह की रोकथाम के विरूद्ध भी 1871 में मद्रास में विधवा पुनर्विवाह संघ का गठन किया गया। विरसालिंगम ने राज मूंदरी समाज सुधार संगठन बनाया जिसका मूल उद्देश्य विधवा पुनर्विवाह था। ज्योतिका फूले ने सत्य शोधक समाज की स्थापना की ताकि जातियों में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को समाप्त किया जा सके। जिसने महिलाओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दुओं में सुधार करने के लिए आर्य समाज आंदोलन की शुरूआत की। उन्होंने शास्त्रों की व्याख्या करते हुए कहा कि पुरूष एवं महिलाओं समान थी। उन्होंने बहुविवाह एवं बाल विवाह का भी विरोध किया था। वे लड़की एवं लड़का दोनों को शिक्षा के समर्थक थे तथा वे संस्कृत एवं अंग्रेजी दोनों को समान रूप से पढ़ने के भी पक्षधर थे। उन्होंने लड़कियों एवं लड़कों की शादी की आयु भी बढ़ाकर 16 वर्ष एवं 21 वर्ष कर दी थी। समाज सुधार के प्रभावों को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने सती प्रथा पर रोक एवं बाल विवाह पर रोक लगाने के लिए कानून बनाये तथा महिलाओं को पुनर्विवाह करने की भी अनुमति दी थी। काँग्रेस द्वारा समर्थित महिला नेताओं ने महिलाओं के लिये विधायी निकायों में समान मताधिकार एवं प्रतिनिधित्व की माँग की। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना भी 1920 में की गयी जिसने महिलाओं में शिक्षा का प्रसार किया।

11.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का समय

जेन्डर आधारित भेदभाव पर 1975–85 के बीच सामाजिक विद्वानों में बहुत शोध हुआ, यह अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक के रूप में भी जाना जाता है। जेन्डर आधारित अध्ययन सभी शोध ा केन्द्रों की प्राथमिकता थी चाहे वह आई.सी.एस.एस.आर हो या फिर यू.जी.सी. हो। कई विश्वविद्यालयों में महिला अध्ययन केन्द्र की भी स्थापना की गयी थी। कुछ विद्वानों ने यह दलील दी कि भारत में महिला आंदोलन पश्चिम के महिला आंदोलन से प्रभावित था। जबकि कुछ विज्ञान इससे असहमत थे क्योंकि उनका मानना था कि नारीवादी आंदोलन की जड़े हमारी संस्कृति एवं भारत के राष्ट्रीय इतिहास में है।

पितृसत्तात्मक मूल्य समाज मे जेन्डर असमानता एवं भेदभाव पर प्रभाव डालते हैं। समाज में ज्यादातर लोग जेन्डर आधारित भेदभाव से नहीं डरते हैं। वे ऐसी रीति–रिवाज एवं परंपराओं को मानते हैं जो जेन्डर आधारित भेदभाव को समर्थन करते हैं। इनमें सती प्रथा तथा धार्मिक संस्थानों में महिलाओं की रोक भी शामिल है। ऐसे मूल्यों को वे लोग अधिक मानते हैं जो लोक संस्थाओं को चलाते हैं। ये संस्थाऐं भी राज्य का ही प्रतीक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राज्य एवं समाज दोनों ही पितृसत्तात्मक मूल्यों का समर्थन करते हैं। लेकिन, पितृसत्तात्मक एवं स्त्री से द्वेष करने वाले लोग एवं तत्व समाज में हमेशा रहते हैं। कई संगठन कार्यकर्ता, विद्वान, बुद्विजीवी एवं नेता जेन्डर आधारित भेदभाव एवं असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। ये पुरूषों के वर्चस्व को समाप्त करने तथा सभी जेन्डर को बीच समानता लाने की कोशिश करते हैं। वास्तव में, जेंडर आधारित भेदभाव को समाप्त करने एवं महिलाओं के सम्मान के लिये महिला आंदोलन भी सक्रिय रूप से आगे आ रहे हैं, जिसमें एल.जी.बी.टी.क्यू. आंदोलन भी प्रमुख है। ये आंदोलन महिलाओं से संबंधित मुद्दों का समाधान करते हैं तथा उनमें नेतृत्व, संगठन एवं महिलाओं को लामबंद करने का प्रयास भी करते हैं।

वैचारिक आधार पर गेल ओमवेट ने महिला आंदोलन को दो भागों में बाँटा है। महिला समानता आंदोलन एवं महिला मुक्ति आंदोलन। महिला समानता आंदोलन का लक्ष्य पितृसत्तात्मक असमानता को खत्म करना है। ये प्रत्यक्ष रूप से परिवार एवं सामाजिक तथा आर्थिक ढ़ाँचे को निशाना नहीं बनाते हैं। महिला मुक्ति आंदोलन प्रत्यक्ष रूप से सामंती वर्गीकरण को चुनौती देते है एवं लिंग आधारित श्रम विभाजन को भी चुनौती देते है। महिला आंदोलन के कई तरीके होते हैं जैसे प्रदर्शन, धरना देना, जन याचिकाऐं, सोशल मीडिया इत्यादि तथा वे सरकार पर इन माध्यमों से दबाव बनाते हैं एवं उनकी माँगों को सरकार को पूरा करने के लिए दबाव बढ़ाते हैं। ये तरीके महिलाओं मे जाग्रति भी उत्पन्न करते हैं एवं उन्हें, जेंडर असमानता एवं भेदभाव के बारे में संवेदनशील भी बनाते हैं। सबसे ताजा मामला निर्भया केस का है जो दिल्ली में दिसंबर, 2012 में घटित हुआ था, यहाँ पर जेंडर आधारित मानव अधिकार का उल्लंघन हुआ था। इसमें एक निर्भया नाम की लड़की (काल्पनिक नाम) के साथ बस में सामूहिक बलात्कार हुआ था जिसमें छः व्यक्ति शामिल थे, जब वह बस में यात्रा कर रही थी। इसमें एक आरोपी बस का ड्राइवर ही था। यह एक ऐसा उदाहरण है जो कि महिलाओं के सम्मान से जुड़ा है। इस घटना का दिल्ली सहित बड़े शहरों में काफी जन आक्रोश दिखाई दिया एवं सड़कों पर लोगों का गुस्सा दिखाई दिया था।

कोर्ट ने चार आरोपियों को फाँसी की सजा सुनाई थी, एक आरोपी ने आत्महत्या कर ली थी एवं एक आरोपी नाबालिग था। सरकार ने न्यायाधीश वर्मा समिति का भी गठन किया ताकि यह सुझाव दिया जा सके कि किस प्रकार जेन्डर आधारभूत भेदभाव को समाप्त किया जा सके।

जेंडर भेदभाव एवं असमानता जाति वर्गीकरण एवं आर्थिक असमानता के साथ जुड़ा हुआ है। उच्च जातियों की महिलाओं के साथ जेंडर भेदभाव होता है जबकि निम्न जातियों की महिलाओं के साथ विभिन्न प्रकार के भेदभाव होते हैं। दलित या आदिवासी महिला के साथ जेंडर, जाति एवं वर्ग आधारित भेदभाव होता है। लेकिन कुछ संगठन जैसे सेवा, कार्यकारी महिला फोरम, एवं अन्नपूर्ण महिला मंडल महिलाओं को सशक्त बनाते हैं एवं आर्थिक गतिविधियाँ भी चलाते हैं। महिला आंदोलनों का नेतृत्व सामान्यतौर पर उच्च जातियों एवं मध्यम वर्ग का होता है।

11.5 एल.जी.बी.टी.क्यू. या ट्राँसजेन्डर

जेन्डर आधारित आंदोलन नवीन सामाजिक आंदोलनों का हिस्सा है। नवीन सामाजिक आंदोलन वे आंदोलन है जो 1980 के पहले आंदोलनो से अलग है। ये वे आंदोलन हैं जो सामाजिक समूहों या वर्गों को सामूहिक तौर पर आंदोलनों में शामिल करते हैं। इनका राजनीतिक दलों के साथ कोई संबंध नहीं है। इन समूहों में ट्राँसजेन्डर भी शामिल है। उन्हें एल.जी.बी.टी.क्यू. के रूप में भी जानते हैं (लेसबियन, गे, बाईलिंगुअल, ट्राँसजेन्डर, क्यूर) ट्राँसजेन्डर विधेयक, 2016 के अनुसार, ट्राँसजेन्डर वह व्यक्ति है जो (क) ना तो पूरी तरह नारी है ना पुरूष है। (ख) पुरूष एवं नारी का जोड़ है, (ग) ना तो नारी है ना ही पुरूष है। ऐसे व्यक्ति का जेंडर जन्म के समय मिलान नहीं होता है। इनमें पुरूष, महिला तथा अन्य जेंडर प्राणी शामिल है। ट्राँसजेन्डरों के साथ उनकी जेंडर स्थिति की वजह से भेदभाव होता है। उन्हें रोजगार प्राप्त करने में सामाजिक भेदभाव होता है। एल.जी.बी.टी.क्यू समूह भारत में अपने आप को संगठित कर रहे हैं एवं कानून बनाने वालों पर दबाव डालकर उनके खिलाफ हो रहे भेदभाव के खिलाफ कानून बनाने की मांग कर रहे हैं। उनकी आत्म पहचान का अधिकार उनकी प्रमुख माँग है।

उनके आंदोलन के जवाब मे, त्रुची शिवा ने राज्य सभा में दिंसबर 12, 2014 को एक प्राइवेट विधेयक प्रस्तुत किया था। राज्यसभा में 24 अप्रैल 2015 को यह विधेयक सर्वसम्मति से पारित हो गया। 6 सितम्बर 2018 को सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिक को वैध घोषित कर दिया। ट्रॉसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों की रक्षा विधेयक, 2019) लोक सभा में 5 अगस्त 2019 को पारित हो गया। यह विधेयक ट्रॉसजेन्डरों के विरूद्ध हो रहे भेदभाव पर रोकथाम लगाता है, जिसमें शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य में हो रहे भेदभाव पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है तथा उनको कहीं भी रहने, घूमने–फिरने, संपत्ति पर हक जमाने का भी अधिकार दिया गया है इसके अलावा उन्हें किसी भी सरकारी या प्राइवेट कार्यालय में नौकरी के अवसर इत्यादि में भी अधिकार देता है। यह बिल ट्रॉसजेन्डरों की आत्म–पहचान के अधिकार को भी सुरक्षित रखता है। यह ट्रॉसजेन्डर पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार की पहचान रखना चाहता है, अर्थात् पुरूष, महिला या ट्रॉसजेन्डर। यह बिल ट्रॉसजेन्डरों के कल्याण के लिए भी कुछ कदम उठाने का सरकार को सुझाव देता है।

अभ्यास प्रश्न 2

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक का क्या महत्व हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) महिला समानता एवं महिला मुक्ति आन्दोलन में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) जेंडर आधारित आन्दोलनों का क्या प्रभाव पड़ा है?

.....

.....

.....

.....

11.6 सारांश

जेन्डर व्यक्ति की पहचान बनाने का प्रतीक है। यह लिंग या लिंग से भिन्न है। लिंग व्यक्ति की जैविक स्थिति की ओर इशारा करता है। जेंडर महिलाओं, पुरूषों एवं ट्रॉसजेन्डरों की

स्थिति के बारे में एवं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बारे में इशारा करता है। तीन प्रकार के जेंडर है पुरूष, महिला और ट्रॉंसजेन्डर या एल.जी.बी.टी.क्यू। भारत में सभी जगह पर पितृसत्ता पुरूष एवं महिलाओं के बीच संबंधों को परिभाषित करते हैं। पुरूषों को महिलाओं की तुलना में ज्यादा अधिकार दिये गये हैं क्योंकि पुरूष सामान्य तौर पर महिलाओं से सर्वोच्च होते हैं। महिलाओं के साथ समाज में कई प्रकार के भेदभाव एवं असामनताऐं होती हैं। लेकिन कुछ आदिवासी ऐसे हैं भारत में जैसे कि खासी, गारो एवं जोन्तिया, नायर केरल में एवं अंडमान और निकोबार जहाँ पर मातृसत्तात्मक व्यवस्था कायम है। यह व्यवस्था पुरूष एवं महिलाओं की स्थिति को समाज में परिभाषित करते हैं। ऐसी व्यवस्था में महिलाओं को पुरूषों से अधिक अधिकार दिया गया हैं। जेंडर आधारित भेदभाव एवं असमानताऐं पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं मूल्यों की वजह से होते हैं तथा महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता न होना ही इसका दूसरा कारण है। निर्णय–निर्माण निकायों में महिलाओं की भागेदारी के प्रावधान से जेंडर–आधारित भेदभाव को समाप्त किया जा सकता है। 1980 से भेदभाव के बारे में जागृति उत्पन्न के कारण महिला आंदोलन एवं ट्रॉंसजेन्डर आंदोलन भी परिणीत हो रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप, सती प्रथा, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, इत्यादि के विरूद्ध कानून बनाये गये हैं तथा ट्रॉंसजेन्डरों के अधिकारों की रक्षा के लिए भी कानून पारित किये गये हैं।

11.7 संदर्भ सूची

कुमार, राधा (1993), *द हिस्टरी ऑफ डूइंग*, नई दिल्ली

बासु, अमृता (1992), *टू फेसेस ऑफ प्रोटेस्ट : कंट्रास्टींग मोड्स ऑफ वीमन एक्टिविजम इन इंडिया*, बर्कलः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफौरनिया प्रेस।

लिडल, जोन्ना एवं रामा जोशी (संकिलत) (1986), *डॉटर्स ऑफ इंडेपेन्डेंस : जेण्डर, कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया*, नई दिल्ली।

शाह, घनश्याम (2004), *सोशल मूवमेंटस इन इंडिया : ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर*, नई दिल्ली : सेज प्रकाशन।

सेन, अर्मत्य (1999), *डेवेलपमेंट एस फ्रीडम*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

सांधारी, कुमकुम एवं वैद सुरेश (संकलित) (1989). *रिकास्टिंग वीमेन ऐसेस इन कोलोनियल हिस्टरी, काली फॉर वीमेन*, नई दिल्ली।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) लिंग एवं जेंडर में अंतर इस प्रकार है : लिंग जैविक श्रेणी है जिसके आधार पर किसी व्यक्ति की पहचान पुरूष, महिला या ट्रॉंसजेन्डर के रूप में की जाती हैं। इसमें व्यक्ति के सत्ता संबंध, सामाजिक, वर्गीकरण तथा आर्थिक अवसर उसके जेंडर का निर्धारण करते हैं। जेंडर किसी व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है।

2) जेंडर आधारित भेदभाव के मुख्य उदाहरण हैं बलात्कार, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर भेदभाव तथा परिवार में भेदभाव, दहेज, दुल्हन को जलाना, जन्म से पहले लिंग का पता करना, बेइज्जती, बाल–विवाह, सती–प्रथा इत्यादि।

3) जेंडर और विकास एक–दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। क्योंकि जेंडर का निर्धारण सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है, विकास इन परिस्थितियों में सुधार लाने में मदद कर सकता है। यदि महिला या ट्रॉंसजेन्डर को सही शिक्षा, पोषण एवं स्वास्थ्य सुविधाऐं मिल जाये तो ये उनके सशक्तिकरण में योगदान दे सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1) अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक (1975–85) का महत्व इसलिये है क्योंकि इस दौरान जेंडर आधारित भेदभाव पर शोध को प्राथमिकता दी गयी थी। आई.सी.एस.एस.आर एवं यू. जी.सी. जेंडर आधारित शोध को प्राथमिकता देते हैं।

2) महिला समानता आंदोलन का प्रमुख लक्ष्य पितृसत्तात्मक असमानताओं को समाप्त करना है। जबकि महिला मुक्ति आंदोलन का लक्ष्य विस्तृत है।

3) जेंडर आधारित आंदोलनों ने जेंडर आधारित भेदभाव के बारे में चेतना जागृत की है तथा उसे समाप्त करने की जरूरत बताया है। इनके प्रभाव के चलते कई प्रकार के कानून पारित किये हैं जिनका प्रमुख लक्ष्य जेंडर भेदभाव एवं असमानता को समाप्त करना है। लेकिन अभी भी जेंडर आधारित भेदभाव कई रूपों में जारी है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 मजदूर और किसान*

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 मजदूर आंदोलन

- 12.2.1 औपनिवेशिक काल में मजदूर आंदोलन
- 12.2.2 सामूहिक कार्य एवं मुद्दे
- 12.2.3 उत्तर–उपनिवेश काल में मजदूर आंदोलन

12.3 किसान आंदोलन

- 12.3.1 छोटे एवं गरीब किसानों के आंदोलन
- 12.3.2 अमीर किसान एवं कृषक आंदोलन

12.4 मजदूर और किसान आंदोलन पर उदारीकरण का प्रभाव

12.5 सारांश

12.6 संदर्भ सूची

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

अपनी माँगों को पूरा करवाने के लिये भारत में मजदूर एवं किसान सामूहिक संघर्षों में शामिल है। उनके सामूहिक कार्यों को सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में शामिल किया जाता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान पायेंगे :

- मजदूर एवं किसानों के आंदोलनों की प्रकृति
- उनकी माँगें, समस्याऐं और नेतृत्व
- सामूहिक कार्यवाही में भागीदारी के तरीके
- राज्य पर इन आंदोलनों का प्रभावः और
- मजदूर एवं किसानों पर उदारीकरण का प्रभाव

12.1 प्रस्तावना

मजदूर और किसान भारतीय समाज का सबसे बड़ा हिस्सा है। मजदूर समाज के शोषित वर्ग से संबंध रखते हैं जबकि किसान गरीब एवं अमीर दोनों ही वर्गों से संबंध रखते हैं। ये दोनों वर्ग अपनी माँगों को पूरा करवाने के लिए सामूहिक रूप से राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों में भाग लेते हैं। उनके द्वारा उठाये गये मुद्दे समाज की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करते हैं। ये इस बात पर भी निर्भर हैं कि मजदूर संगठित एवं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं या औद्योगिक क्षेत्र में, या किसान गरीब है या फिर अमीर किसान है जो कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कार्यरत है या फिर पिछड़ी हुई सामंती अर्थव्यवस्था में कार्यरत है। इस इकाई में हम भारत में मजदूरों और किसानों की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

*डा. रबिन्द्र नारायण मिश्रा, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जी.टी.बी.सी., दिल्ली विश्वविद्यालय

12.2 मजदूर आन्दोलन

भारत में मजदूर आन्दोलन को दो चरणों में बाँटा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का चरण।

12.2.1 औपनिवेशिक काल में मजदूर आन्दोलन

भारत में 19वीं सदी के मध्य में मजदूर आंदोलन उभर कर सामने आया। जब आधुनिक उद्योगों, रेलवे, डाक तथा टेलीग्राफ नेटवर्क की वृद्धि हुई तब यह आंदोलन बड़ी तेजी से उभरा। लेकिन संगठित तरीके से मजदूर आंदोलन की शुरूआत द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् हुई थी। संगठित मजदूर संघों को श्रामिक संघ कहा जाता है। अखिल भारतीय श्रामिक संघ की स्थापना (एटक) 1920 में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य था मजदूरों को संगठित करना तथा उनके आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक हितों की रक्षा करना। 1920 के मध्य में देश में वामपंथी विचारधारा का बोलबाला था। 1928 में वामपंथी लोगों ने मजदूरों के संगठनों पर अपना कब्जा कर लिया था। विशेषकर (एटक) के संगठन पर कम्युनिस्टों का कब्जा हो गया था जबकि कुछ उदारवादी लोगों ने अपना अलग संगठन बनाया। अखिल भारतीय श्रामिक संघ (एटक) 1930 का वर्ष मजदूर आंदोलन का सबसे अच्छा काल माना जाता है जब इस समय मजदूर आंदोलन चरम सीमा पर था। 1929 में मेरठ षड़यंत्र केस में कम्युनिस्टों को बंदी बनाया गया तथा बाम्बे में 1929 की टैक्सटाइल हड़ताल भी विफल रही थी। मजदूर मोर्चे पर कई गतिविधियाँ शुरू थी। गंभीर आर्थिक संकट ने भी इसे समय मजदूरों के गुस्से को अधिक बढ़ाया। इसने बड़े स्तर पर मजदूरों की छंटनी भी की। उस वक्त के मजदूर आंदोलन की मुख्य नजर वेतन तथा छंटनी को रोकना था।

द्वितीय विश्व युद्ध में मजदूर संघ के नेताओं का विभाजन किया। कम्युनिस्टों ने यह दलील दी कि 1941 में सोवियत यूनियन पर नाजी हमले ने युद्ध का चरित्र बदल दिया। साम्राज्यवादी युद्ध अब जनता के युद्ध में बदल गया था। कम्युनिस्ट इंडियन रूस की कम्युनिस्ट पार्टी की अनुसरण कर रहे थे तथा वे यह चाहते थे कि बदली हुई परिस्थितियों में मजदूरों को ब्रिटिश का समर्थन करना चाहिये। लेकिन राष्ट्रवादी नेता यह चाहते थे कि राष्ट्रीय आंदोलन मजबूत हो एवं ब्रिटिश शासन को भारत से उखाड़ फेंका जाये। इस वैचारिक मतभेद ने फिर से मजदूर आंदोलन में विभाजन पैदा किया। अपनी रोज मर्रे की जरूरतों ने मजदूरों को यह अहसास दिलाया कि उनकी एकजुटता ही इससे राहत दिला सकती है। सरकार के अनेक प्रयासों के बावजूद जिसमें हड़ताल को निषेध माना गया, उस वक्त मजदूरों के आंदोलन एवं उनके संघ में बढ़ोतरी हुई थी।

12.2.2 सामूहिक कार्य एवं मुद्दे

जिन मुद्दों पर मजदूर हड़ताल करते हैं वे हैं, वेतन, बोनस, छुट्टी, कार्य के घंटे, हिंसा तथा अनुशासन, औद्योगिक एवं श्रम नीतियाँ इत्यादि। मजदूर अपनी समस्याओं को हल करने के लिए कई प्रकार के कदम उठाते हैं। जिनमें, हड़ताल, सत्याग्रह, भूख हड़ताल, बंध, घेराव, प्रदर्शन, अवकाश तथा बिजली कटौती इत्यादि शामिल है। सबसे ज्यादा जो मजदूरों का कार्य है वह है हड़ताल करना। इनमें कुछ ऐसे उदाहरण है जो रेलवे, पूल, खादान, टैक्सटाइल वर्करों ने स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले हड़ताल की थी। इनमें जो केन्द्र हड़ताल के थे वे नागपुर, अहमदाबाद, बम्बई, मद्रास, हावड़ा और कलकत्ता थे। 1920 में, गाँधीवादी ने अहमदाबाद के टैक्सटाइल मजदूरों की हड़ताल में दखल दिया तथा उनका नेतृत्व किया।

12.2.3 उत्तर–औपनिवेशिक काल में मजदूर आंदोलन

i) राष्ट्रीय स्तर पर

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मजदूरों की उच्च आकांक्षाओं पर पानी फिर गया था। उनकी सेवा शर्तों एवं वेतन में कोई खास सुधार नहीं हुआ था। उसी समय तीन प्रमुख मजदूर संगठनों का जन्म हुआ। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस (एटक), का जन्म 1947 में कॉंग्रेस द्वारा हुआ। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने 1948 में हिन्द मजूदर सभा का गठन किया। मजदूरों के अपने अधिकारों की रक्षा के लिये संघर्ष किया। देश में कई हड़ताल हुई। 1947 में सबसे ज्यादा हड़ताल हुई थी, तकरीबन 1811, जिनमें करीब 1840 हजार मजदूर शामिल हुए थे। उस समय रिकार्ड स्तर पर हड़ताल हुई थी। 1949 में कुछ क्रांतिकारियों ने यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस का गठन किया। जब 1964 में कप्युनिस्ट पार्टी में विभाजन हुआ, तब इंटक में भी विभाजन हुआ एवं 1990 में एक नया मजदूर संगठन सीटू गठित हुआ। ये दोनों संगठन एटक एवं सीटू सी.पी.आई एवं सी.पी.आई. (मार्क्सवादी) संबंधित है।

1994 में मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा दिये गये आंकड़ों के अनुसार भारतीय मजदूर संघ जो कि भाजपा से संबंधित है, उनकी सदस्य संख्या 31.17 लाख मजदूर है, और वह सबसे ऊपरी पायदान पर है। कॉंग्रेस से संबंधित एटक उसकी सदस्य संख्या करीब 27.06 लाख है, जबकि तीसरे पायदान पर सी.पी.एम. से संबंधित सीटू है, जिसकी सदस्य संख्या करीब 17.98 लाख है। चौथे स्थान पर हिन्द मजदूर संघ का है। आंकड़ों के मुताबिक इंटक की स्थिति औरों के मुकाबले में कमजोर हुई हैं। जबकि बाकी तीनों की स्थिति मजबूत हुई हैं।

ii) प्रांतीय स्तर पर

1960 में एक महत्वपूर्ण घटना घटी जब कुछ क्षेत्रीय संगठन भी उभर कर सामने आये जिनका संबंध डी.एम.के. एवं ए.आई.डी.एम.के. से था। शिव सेना का जन्म भी बंबई में 1967 में हुआ था। इसने भी अपना अलग मजदूर संगठन बनाया जिसका, नाम था भारतीय कामगार सेना। यह समझा जाता है कि शिव सेना को बंबई में औद्योगिक घरानों का समर्थन प्राप्त था। इनका मूल उद्देश्य तथा कम्युनिस्ट एवं सोशलिस्ट मजदूर संगठनों का विरोध करना। इसने अपने मकसद में सफलता भी प्राप्त कर ली थी और 1970 के दशक में इसका पूरी बंबई में वर्चस्व कायम हो गया था। जब 1975 में आपातकाल लगाया गया था तब, शिव सेना के प्रभुत्व को चुनौती देने वाला दत्ता सामंत एक मजदूर नेता उभर कर सामने आया था। उसने आपातकाल में भी घुटने टेकने से मना कर दिया था। उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया था। उस वक्त वे कॉंग्रेस के एम.एल.ए. थे। जब वे जेल से रिहा होकर वापस आये और 1977 में आपातकाल हटा दिया गया था तब वे और भी लोकप्रिय हो गये थे। 1970 के आखिरी समय तक वे पूरे बंबई–पूणे क्षेत्र में एक ताकतवर ट्रेड यूनियन लीडर के रूप में पहचाने जाने लगे। 1978 में, उन्होंने कॉंग्रेस एवं एटक दोनों को छोड़ दिया तथा एक स्वतंत्र संगठन बनाया जिसका नाम था महाराष्ट्र गिरनी कामगार यूनियन। जब तक उनकी हत्या हुई तब तक वे बंबई के एक मजबूत ओर प्रभावशाली ट्रेड यूनियन नेता बने हुए थे।

iii) बिना राजनीतिक गठजोड़ के ट्रेड यूनियन

1960 के दशक में स्वतंत्र ट्रेड यूनियन संगठनों का उदय हुआ। वे पूरी तरह से स्वतंत्र थे क्योंकि इनका किसी राजनीतिक पार्टी से कोई संबंध नहीं था। इन ट्रेड यूनियनों

का उदय राजनीतिक पार्टी से संबंधित ट्रेड यूनियनों से खफा होकर हुआ था। क्योंकि इन यूनियनों का नेतृत्व शिक्षित मध्यम वर्ग से था। इंजिनियरिंग मजदूर सभा का नेतृत्व आर. जे. मेहता ने किया था, जो कि एक जाने माने इंजिनियर थे। दत्ता सामंत ने भी कई संगठनों का गठन किया जैसे इंजियरिंग वर्कस, मुबई जनरल कामगार यूनियन, महाराष्ट्र गिरवी कामगार यूनियन इत्यादि। शंकर गुहा नियोगी ने भिलाई, मध्यप्रदेश में खदान मजदूरों की यूनियन बनाई। नियोगी की हत्या 1990 में कर दी गयी। इसी प्रकार ए. के. रॉय ने भी धनबाद इलाके में खदान मजदूरों को संगठित किया। रॉय को स्थानीय खदान मजदूरों का भी पूरा समर्थन हासिल था। इसी प्रकार का अन्य उदाहरण भी है। इला भट्ट ने सेल्फ–इम्पलोइड वूमेन एसोसिएशन का (सेवा) गठन किया था। उन्होंने सेवा नामक संगठन का गठन इसलिये किया क्योंकि महिला मजदूरों की स्थिति ठीक नहीं थी। उनकी समस्याओं का समाधान कोई भी संगठन नहीं कर पा रहा था।

सिर्फ ये ही स्वतंत्र यूनियनों का उदाहरण नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन 1982 में बम्बई में टैक्सटाइल मजदूरों का था। इसका नेतृत्व दत्ता सामंत ने किया था क्योंकि राष्ट्रीय मील मजदूर संघ से उनका मोह भंग हो गया था। टैक्सटाइल मजदूरों ने 1982 में अनिश्चितकालीन हड़ताल की थी। उनकी माँग थी उच्चतम वेतनमान, अस्थायी मजदूरों को स्थायी करना भत्ते देना, तथा आवास भत्ता इत्यादि। अन्य क्षेत्रों के मजदूर भी दत्ता सामंत के पीछे जुड़ गये थे। औद्योगिक घरानों ने हड़ताल को सही नहीं माना। हड़ताल से मजदूरों को भी काफी तकलीफ हुई थी।

हड़ताल का असर ग्रामीण इलाकों में भी दिखाई दिया था, जहाँ से मजदूर आते थे। टैक्सटाइल वर्कर ज्यादातर गाँवों से आते थे और वे गरीब एवं लघु किसान थे। ये शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों से थे। दत्ता सामंत ने ग्रामीणों के मुद्दों को भी मजदूरों के साथ जोड़ा था। जैसे कृषि मजदूरों को भी समान वेतन दिया जाये टैक्सटाइल मजदूरों की तरह। हड़ताल का असर हालांकि ज्यादा नहीं हुआ और यह सफल नहीं हुई। लेकिन इसने दत्ता सामंत को एक बड़ा नेता बंबई में बनने का मौका दिया था

iv) भारत में मजदूर आंदोलन की सीमाएं

भारत में मजदूर आंदोलन ने कई प्रकार की कमियों का सामना किया है। केवल कुछ ही वर्गों के घटक संगठित हुए हैं। यहाँ तक कि संगठित क्षेत्र के मजदूर भी ट्रेड यूनियन आंदोलन में भाग नहीं लेते हैं, क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्य तौर पर कृषि आधारित है। छोटे किसान एवं खेतिहर मजदूर बेरोजगारी एवं आय की कमी की समस्या का सामना करते हैं। इसलिए वे मजबूरन शहरों की तरफ रोजगार की तलाश में जाते हैं। ज्यादातर मजदूर अशिक्षित एवं नादान है तथा उन्हें कई बातों का सामना करना पड़ता है। मजदूरों का एक बड़ा वर्ग ट्रेड यूनियन आंदोलन में भाग नहीं लेता क्योंकि उनके लिए शहरी जीवन बहुत अस्थायी होता है। इस लिए उन्हें मजदूरों की एकता का अहसास नहीं होता है। दूसरी सबसे बड़ी कमजोरी है ट्रेड यूनियन की वह है धन की। यह सही है कि भारत में मजदूर वर्ग की जनसंख्या बहुत कम हैं।

लेकिन ट्रेड यूनियन संगठनों की संख्या अधिक है। भारतीय मजदूरों की आय दर बहुत कम है। इसलिए वे दूसरे अन्य स्रोतों पर निर्भर रहते हैं। अन्य कारण है मजदूरों का नेतृत्व किसी बाहरी व्यक्ति के हाथों में होना। इसकी मुख्य वजह है हमारे मजदूरों की शिक्षा कमजोर है। इसलिए इनका नेतृत्व राजनीतिज्ञ करते हैं। हमेशा यह अनुभव किया गया है कि मजदूरों

का नेतृत्व उन्हीं में से होना चाहिए जिसे समस्याओं की पूरी तरह से जानकारी हो। क्योंकि ज्यादातर राजनीतिक नेतृत्व मजदूरों की जरूरतों एवं उनकी समस्याओं की अनदेखी करते हैं। और वे मजदूरों को केवल राजनीतिक पार्टियों के हितों में इस्तेमाल करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) भारत में मजदूर आन्दोलन के प्रमुख मुद्दों की पहचान कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) गैर–राजनीतिक ट्रेड यूनियनों के उदय के क्या कारण थे?

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में ट्रेड–यूनियन आंदोलन की सीमाओं को रेखांकित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 किसान आन्दोलन

कृषक या किसान वह वर्ग है जो कि खेती या कृषि के कार्यों से संबंधित हो तथा उसके पास खेती की जमीन हो, तथा खेती के कार्यों में पूरी तरह भाग लेता हो। ये बिलकुल अलग समूह में होते हैं। पिछड़ी एवं सामंती कृषि व्यवस्था में उनका कार्य जमीन जोतना तथा जमींदारों के लिए कार्य करना है। जबकि प्रगतिशील कृषि व्यवस्था में, काश्तकार भूमि के मालिक होते हैं, क्योंकि वहां पर भूमि सुधार लागू किया गया है, जिस कारण वे भूमि के मालिक होते हैं। जो किसान गरीब है, तथा अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए उनके पास संसाधन की कमी हो वे दूसरों के खेतों में काम करते हैं। ये गरीब एवं छोटे किसान होते हैं। जो किसान वेतन के लिए काम नहीं करते, तथा उनके पास पर्याप्त संसाधन हैं, ऐसे किसान अमीर तथा मध्यम किसान होते हैं। ऐसे किसान अपने परिवार पर निर्भर रहते

हैं या फिर खेती के लिए बाहर से मजदूर बुलाते हैं। इस इकाई में आप छोटे एवं गरीब किसानों, तथा अमीर किसानों के आन्दोलन के बारे में अध्ययन करेंगे।

12.3.1 छोटे एवं गरीब किसानों के आंदोलन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं उसके पश्चात् कई किसान आंदोलन हुए। उनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैंः– अवध आंदोलन (उत्तर प्रदेश) 1920 में खेड़ा एवं बारदोली आंदोलन गुजरात में, चम्पारण आंदोलन बिहार में तथा मोपला विद्रोह। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के प्रमुख उदारहण है, तेलंगाना आंध्रप्रदेश में, तिभागा एवं नक्सलवादी आंदोलन पश्चिम बंगाल में।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले किसान काफी दयनीय हालात में थे तथा उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनका एक वर्ग द्वारा शोषण किया जा रहा था वह वर्ग था जमींदारों साहूकारों तथा औपनिवेशिक शासकों का। जमींदारों ने किसानों से जबरन बेगार करवायी, उन्हें जबरदस्ती कार्य करने पर मजबूर किया गया। उनके ऊपर कई प्रकार के शुल्क तथा कर थोपे गये, जिस कारण वे इन करों को चुकाने में असमर्थ थे तथा उस वक्त प्राकृतिक आपदा जैसे अकाल एवं सूखा की समस्या भी भंयकर थी। उसका भी असर किसानों पर बहुत अधिक पड़ा। किसान बुरी तरह से साहुकारों के कर्ज के तले डूब गये थे क्योंकि उन्हें अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए कर्ज के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था। जब किसान किराया, सेवा या बेगार देने की स्थिति में नहीं बचते थे तो उन्हें उनकी जमीन से बेदखल किया गया। उन्हें शारीरिक प्रताड़ना भी दी गयी। फसल का भाव समीकरण तथा नये भूमि कानूनों को लागू करने के पश्चात् उनकी हालात और बिगड़ गयी।

किसानों ने जमींदारों, साहुकारों तथा औपनिवेशिक शासन के एजेंटों के खिलाफ विद्रोह शुरू किया। इसका नेतृत्व भी, ग्रामीण किसानों तथा शहरी बुद्धिजीवी वर्ग ने किया। बाबा राम चंद उनमें से एक किसान नेता थे। किसानों को कुछ संगठनों ने भी संगठित किया। जहाँ संगठन नहीं था वहाँ औपचारिक तरीके से किसानों ने संगठित होकर काम किया। यह स्थानीय विद्रोह के लिये विशेषतौर पर सही था। औपचारिक संगठन ने किसानों को एकजुट होने, रणनीति बनाने तथा कार्यक्रम तय करने में बहुत मदद की।

20वीं सदी की शुरूआत में विभिन्न राजनीतिक दलों ने किसानों को एकजुट करने की कोशिश की। काँग्रेस पार्टी ने 1920 से ही अपने समर्थन को बढ़ाने के लिए किसानों को एकजुट किया। इसने किसानों को राष्ट्रीय स्तर पर अपने आंदोलन को बढ़ाने में भी मदद मिली। 1928 के बारदोली सत्याग्रह के पश्चात् किसानों के आंदोलन को भी इसमें मिला लिया गया। लेकिन काँगेस ने किसानों एवं जमींदारों के बीच झगड़े को बढ़ाने की अनुमति नहीं दी। काँग्रेस ने किसानों, जमींदारो, एवं अन्य वर्गों के बीच गठजोड़ बनाने की कोशिश की।

सविनय अवज्ञ आंदोलन के पश्चात् क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों का यह मानना था कि काँग्रेस जमींदारों एवं पूँजीपतियों के प्रति सहानुभूति रखती है। इसलिए उनके अंदर स्वतंत्र नेतृत्व प्रदान करने का अहसास हुआ ताकि उनके हितों को सुरक्षित रखा जा सके। इसलिए इसके परिणामस्वरूप 1936 में, लखनऊ में स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन किया गया। वे बिहार प्रदेश किसान सभा के संस्थापक थे। एन. जी. रंगा जो कि आंध्र प्रदेश में किसान आंदोलन के पुरोधा थे इसके महासचिव बने। इस प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर संगठनों के गठन के कारण, किसानों की माँगों एवं उनकी

अपेक्षाओं को पूरा करने का बल मिला। बहुत जल्द ही कई जिलों में अखिल भारतीय किसान सभा की शाखाएं स्थापित हो गयी थी। 1937 में कई प्रांतों में काँग्रेस मंत्रीमंडल के गठन के पश्चात किसान आंदोलन में और तेजी आई। चुनावों के दौरान काँग्रेस ने यह वादा किया कि वह किसानों की स्थिति में सुधार लाने की कोशिश करेगी। उस वक्त नागरिक स्वतंत्रताओं में वृद्धि हो रही थी जिसने किसानों को लामबंद करने का अवसर दिया। कई काँग्रेस मंत्रालयों ने किसानों के लिए कानून बनाये कर्ज से राहत देने के लिए, भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिए तथा सुरक्षा देने के लिए। लेकिन इन उपायों से भी निम्न किसानों की स्थिति में कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किसानों की नाराजगी और बढ़ती गयी तथा उन्होंने इसका विरोध किया, प्रदर्शन किया तथा सम्मेलन एवं सभाऐं आयोजित की। उन्होंने किसानों विरोधी कदमों की आलोचना की एवं उनके नेताओं की गिरफ्तारी तथा सभाओं पर पाबंदी का भारी विरोध किया। द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होने के बाद, काँग्रेस मंत्रिमंडल का इस्तीफा देना, तथा किसान सभा नेताओं पर दमन भी शुरू हुआ। 1939 में अखिल भारतीय किसान सभा का राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता आचार्य नरेन्द्र देव ने की। उन्होंने किसान सभा का काँग्रेस से अलग करने की बात कही। उनके अनुसार एक अलग किसान सभा की आवश्यकता है, ताकि काँग्रेस पर दबाव बनाया जा सके। युद्ध की समाप्ति के बाद किसान आंदोलन को नया मोड़ दिया गया। किसान आंदोलन के इतिहास में पहली बार सत्ता के हस्तांतरण के बाद आंदोलन को नई गति मिली। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय किसान आंदोलन को नई ऊर्जा मिली अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए। इन आंदोलनों का विश्लेषण करने के बाद हम उनकी सफलतता, कमियों तथा सामाजिक आधार के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

तेभागा आंदोलन पश्चिम बंगाल का एक प्रमुख आंदोलन था। 1946 में इस आंदोलन को प्रांतीय किसान सभा ने शुरू किया था। धीरे–धीरे वामपंथियों एवं कम्युनिस्टों का किसान सभा में प्रभाव बढ़ता गया। 1947 में, किसान सभा का नेतृत्व पूरी तरह से कम्युनिस्टों के हाथों में चला गया था। कम्युनिस्टों ने बंगाल की प्रांतीय किसान सभा का भी नेतृत्व किया। इस आंदोलन ने जल्दी ही हिंसा का रूप धारण कर लिया तथा बरगरदार तथा जोतंदारों के बीच झगड़ा भी बढ़ गया। बरगरदारों ने यह फैसला किया कि वे अपनी फसल का आधा हिस्सा जोतेदारों को नहीं देगें केवल इसका एक तिहाई हिस्सा ही उन्हें देंगे। गरीब किसान, मध्यम किसान एवं जोतेदारों के लड़कों ने आंदोलन का नेतृत्व किया। इस मध्यम वर्ग के नेताओं ने इस आंदोलन का नेतृत्व आखिरी तक किया। उनको यह उम्मीद थी कि इससे जमींदारी प्रथा को समाप्त किया जा सकेगा। अमीर किसान धीरे–धीरे उनसे अलग होने लगे। जब सरकार ने 1947 में आंदोलन को कुचलने की कोशिश की तो आंदोलन समाप्त हो गया।

दूसरा सबसे बड़ा आंदोलन तेंलगाना का आंदोलन था। इसकी शुरूआत 1946 में निजाम द्वारा शासित हैदराबाद स्टेट में हुई थी। यह आंदोलन द्वितीय–विश्व युद्व के आर्थिक संकट के संदर्भ में विकसित हुआ था। यह आंदालेन जागीरदारों द्वारा जबरदस्ती कर वसूलने के खिलाफ शुरू हुआ था। शुरूआत में इसका नेतृत्व अमीर किसानों के हाथों में था तथा आंदोलन का मुख्य उद्देश्य जमींदारी प्रथा समाप्त करना था। लेकिन जल्दी ही इसका नेतृत्व गरीब किसानों के हाथों में आ गया, जिससे जमींदारों की जमीन पर कब्जा कर लिया गया तथा उसे आपस में बाँट लिया गया। 1947 के आस–पास इस आंदोलन ने गुरिल्ला सेना का गठन किया, जिसमें ज्यादातर आदिवासी लोग थे। इस सेना ने जमींदारों से हथियार छीन लिये तथा सरकारी कर्मचारियों को बाहर निकाल दिया। उन्होंने 15000 कि. मी. के क्षेत्र पर अपना कब्जा कर लिया था, जिसमें करीब 40000 जनसंख्या थी। इन इलाकों में प्रशासन लोकल किसानों के हाथों में था। सेना ने 1951 में इस आंदोलन को कुचल दिया।

1967 नक्सलवाड़ी आंदोलन शुरू हुआ था। यह आंदोलन पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी क्षेत्र में शुरू हुआ था। लगभग स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशक बाद काँग्रेस सरकार के खिलाफ लोगों में काफी नाराजगी थी, जिससे काँग्रेस करीब 8 राज्यों में चुनाव हार गयी थी। लेकिन कम्युनिस्टों ने केरल एवं पश्चिम बंगाल दोनों ही जगह अच्छा प्रदर्शनन किया। सकल घरेलू उत्पादन घट रहा था तथा बेरोजगारी बढ़ रही थी। कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ युवाओं ने सी.पी.एम. की नीतियों का विरोध किया। इसके बाद, सशस्त्र संघर्ष करने का फैसला किया। इसमें किसानों को शामिल करने की बात कही गयी। दार्जिलिंग जिले में सी.पी.एम. का किसान संगठन कम्युनिस्टों के हाथों में था। सरकार की भूमि सुधार नीति भी सफल न हो सकी क्योंकि जमींदारों के पास खेती की जमीन का बंटवारा नहीं किया जा सका। इससे किसानों में रोष पैदा हो गया इस स्थिति में किसान संगठनों ने सरकार की किसान समितियों के गठन का आह्वान किया। इसके बाद सस्त्र संघर्ष करने का ऐलान किया ताकि जमीन पर जोतेदारों का कब्जा समाप्त किया जाये एवं जमीन को गरीब किसानों में बाँटी जा सके। इस आंदोलन पर तेंलगाना आंदोलन से भी काफी प्रेरणा मिली थी। नक्सलबाड़ी आंदोलन 1967 मई के तीसरे सप्ताह में अपने चरम पर था तथा इसे काफी सुर्खियाँ मिली क्योंकि यह राज्य सरकार के साथ लड़ाई लड़ रहा था जहाँ पर सी. पी. एम. सत्ता में थी तथा चीन नक्सलाबाड़ी आंदोलन का समर्थन कर रहा था।

यह आंदोलन मात्र 53 दिन तक चला। जुलाई, 1967 में तब के मुख्यमंत्री अजोय मुखर्जी ने पुलिस बटालियन एवं सैन्य टुकड़ी भेजकर पूरे क्षेत्र को घेर लिया तथा विद्रोहियों को कुचल दिया गया। नक्सलबाड़ी एक प्रकार से छोटी सी घटना थी, लेकिन इसमें बड़ी मात्रा में लोग हताहत हुए थे। तेलंगाना इस हिसाब से बड़ी घटना थी। लेकिन नक्सलबाड़ी ने सशस्त्र किसान विद्रोह को जन्म दिया। इसका असर पूरे देश में पड़ा था। इसके बाद जो भी क्रांतिकारी अन्य राज्यों से आये वे सब नक्सलवादी कहलायें। नक्सलवाद के उदय के बाद सी.पी.आई पार्टी का भी गठन हुआ। यह तीसरी कम्युनिस्ट पार्टी थी। इस पार्टी का मानना था कि समाजवाद को सशस्त्र संघर्ष से ही प्राप्त किया जा सकता है। यह पार्टी हिंसा का समर्थन करती है, जमींदारों से भूमि छीनने की बात करती है तथा उसे गरीब किसानों में बांटने की बात करती है। नक्सलवादी आंदोलन उन किसानों के लिए बहुत मददगार साबित हुआ जिनके पास जमीन नहीं थी तथा वे खेतिहर मजदूर थे। उन्हें सरकार से भी सिर्फ वादों के कुछ भी नहीं मिला। उनकी स्थिति बड़ी दयनीय थी क्यों कि उनका शोषण समाज के बड़े वर्ग द्वारा किया जा रहा था। उन्हें इस आंदोलन से एक आशा की किरण नजर आयी थी। यह सिद्धांत ग्रामीण लोगों को प्रेरणा देने में काफी सफल रहा जो कि बहुत गरीब थे। कई स्थानों पर वे रोजगार की सुरक्षा, न्यूनतम मजदूरी, एवं अन्य मुद्दों पर संघर्ष कर रहे थे। कई जगह पर उन्हें वोट देने वक्त भी हिंसा होती है। ये अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए हिंसा का भी सहारा लेते हैं। क्योंकि उन्हें हमेशा समाज के प्रभुत्व वर्गों से डराया जाता है। हिंसा में वे इसलिए विश्वास करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि पुलिस हमेशा जमींदारों एवं बड़े वर्गों का ही समर्थन करती है।

भूमि सुधार का दूसरा चरण 1961 के भूमि आधिग्रहण कानून के रूप में जाना जाता है। इसका उद्देश्य भूमिहीन लोगों को भूमि वितरण करना था। 1967 के नक्सलवादी आंदोलन तथा 1970 के भूमि जब्ती आंदोलन के पश्चात् भूमि अधिग्रहण पर ज्यादा बल दिया गया। 1969 में गृह मंत्री ने यह चेतावनी दी कि यदि कृषि में आये तनाव को कम नहीं किया गया तो स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जायेगी। आपातकाल के दौरान, श्रीमति इंदिरा गाँधी के 20 सूत्री कार्यक्रमों में, भूमि सुधार भी एक प्रमुख हिस्सा था। लेकिन इन सबके बावजूद 1977 में 4.04 लाख हैक्टेयर जमीन अतिरिक्त घोषित की गयी, जिसमें से 2.10 लाख हैक्टेयर को

सरकार के नियंत्रण में ले लिया गया तथा बाकी 1.29 लाख हैक्टेयर को ही गरीबों में बाँटा गया था। हरित क्रांति का भी उनकी स्थिति पर कोई अंतर नहीं पड़ा। ग्रामीण इलाकों में गरीबी रेखा के नीचे लोगों का प्रतिशत भी 1960–61 में 38.11 प्रतिशत से 1977–78 में 48 प्रतिशत हो गया था। खेतिहर मजदूरी ही उनका प्रमुख आय का स्रोत था तथा यह भी पता चला कि उनकी मजदूरी एवं काम के दिनों में भी जबरदस्त गिरावट आई है।

नक्सलवादी ग्रुप आंध्रप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, झारखंड एवं छत्तीसगढ़ में सक्रिय है। कई बार ये हिंसात्मक गतिविधियों में शामिल होते हैं। लेकिन ये ग्रामीण लोगों को प्रेरित भी करते है क्योंकि ये उनकी समस्याओं को उठाने का काम करते हैं। सरकार उनके कार्य को कानून एवं व्यवस्था की समस्या मानकर उन पर पुलिस एवं सैनिक बलों द्वारा दमन कराती है। सरकार कभी भी उनकी समस्याओं के प्रति सहानुभूति नहीं रखती है। सरकार द्वारा जारी भूमि सुधारों का लाभ भी इन वर्गों को नहीं हो रहा है। सरकार के उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए अन्य प्रयास भी किये, लेकिन इनका लाभ ज्यादातर ऊँचे लोगों को ही हो रहा है। खेतीहर मजदूर, गरीब किसान, ठेके पर मजदूर, दलित आदिवासी ये सब अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इनका संघर्ष मुख्यतया मजदूरी, भूमि एवं अन्याय के खिलाफ है। उनका आंदोलन कमजोर एवं विभाजित भी है। लेकिन इनमें एक मजबूत ताकत बनकर उभरने की क्षमता है, और ये न्याय प्राप्त कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) औपनिवेशिक काल में किसानों का किस प्रकार से शोषण हो रहा था?

.....

.....

.....

.....

.....

2) तेलंगाना आन्दोलन क्या था?

.....

.....

.....

.....

.....

3) नक्सलबाड़ी आंदोलन पर टिप्पणी कीजिए?

.....

.....

.....

.....

12.3.2 अमीर किसान एवं कृषक आंदोलन

20वीं सदी के अंत में, कई सामाजिक समूहों द्वारा आंदोलन किय गया। इनमें अमीर किसान, कुलक या पूँजीपति किसान देश के विभिन्न भागों से संबंधित थे। ये अपने–अपने क्षेत्रों में किसान संगठनों के पीछे लामबंद हो गये थे। ये संगठन थे, भारतीय किसान यूनियन, शोतकारी संगठन खदयुत समाज, कर्नाटक राज्य रायथा संघ और विवसायीगल तमिलनाडु से इत्यादि। इन संगठनों के प्रमुख नेताओं में भूपेन्द्र सिंह मान पंजाब से, महेन्द्र सिंह टिकैत यू.पी. से, शरद जोशी महाराष्ट्र तथा नन्दुनजप्पा स्वामी कर्नाटक से थे। ये किसान अपने–अपने क्षेत्रों से बहुत प्रभावशाली एवं मजबूत किसान है। वे मुख्यतया मध्यमवर्गीय जातियों से संबध रखते थे। उनको राज्य की नीतियों, भूमि सुधार तथा हरित क्रांति का भी लाभ मिला था। वे अपने खेत में स्वयं काम करते हैं तथा उनका समर्थन परिवार के अलावा दूसरे लोग भी करते हैं। वे ग्रामीण समाज के सभी संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं, जैसे, भूमि, जल संसाधन, पशु, आधुनिक तकनीक जैसे ट्रेक्टर, इत्यादि। अमीर किसानों का आंदोलन किसी ग्रामीण शोषण के खिलाफ नहीं था। वास्तव में, उनमें एक बड़ा वर्ग अमीर किसानों का था। उनका निशाना केवल राज्य सरकार एवं उनकी व्यापार नीति थी।

इनकी प्रमुख माँग भी कीमतों में वृद्धि, सब्सीडी देना, कर्ज माफ करना, बिजली के बिल कम करना, पानी के बिलों में भी कटौती करना तथा किसानों का कृषि मूल्य आयोग में प्रतिनिधित्व करना इत्यादि। महाराष्ट्र के अलावा, इन आंदोलनों ने लघु उत्पादकों की समस्याओं को नहीं उठाया था। जबकि, टिकैत ने भूमि अधीग्रहण कानूनों को समाप्त करने की बात की, जिसका संबंध न्यूनतम मजदूरी कानून से था। किसानों को लामबंद करने के लिए सबसे ज्यादा तरीका है, रैली करना, सत्याग्रह करना, रोड़ जाम करना, गाँव बंदी करना तथा सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुँचाना इत्यादि। कभी–कभी इससे हिंसा भी फैलती है। ये किसी राजनीतिक पार्टी से संबंध नहीं रखते थे, जिससे उनके लामबंद होने में बहुत बड़ा योगदान था।

भारत में किसान आन्दोलनों का चरित्र एक जैसा ही था, अर्थात् उन्होंने बाजार–उन्मुक्त माँगों को उठाया, उनका चरित्र गैर राजनीतिक था, उनका निशाना राज्य था, लामबंद का तरीका था, इत्यादि। उत्तर प्रदेश में भारतीय किसान यूनियन का आंदोलन नेतृत्व के लिहाज से अलग था। महेन्द्र सिंह टिकैत जो कि भारतीय किसान यूनियन के मुखिया थे, वो भी परंपरागत जाट समुदाय की सर्व खाप संगठन से संबंध रखते थे। उनकी इसी सामाजिक स्थिति के कारण वे भारतीय किसान यूनियन के बड़े नेता बने, क्योंकि 1987 में चौधरी चरण सिंह की मृत्यु के बाद उतना बड़ा नेता नहीं था। टिकैत ने सभी खाप मुखिया को भारतीय किसान यूनियन में शामिल किया। इसके अलावा भारतीय किसान यूनियन ने कुछ सामाजिक मुद्दों जैसे दहेज को भी अपना प्रमुख एजेन्टा बनाया था।

महेन्द्र सिंह टिकैत ऐसी भाषा बोलते थे जिसमें चरण सिंह की झलक दिखाई देती थी। चौधरी चरण सिंह का मानना था कि भारतीय योजना के अंतर्गत हमेशा शहरी झुकाव ज्यादा रहता है, जिसका दायित्व वे कृषि के संसाधनों के बिखराव को देते हैं। हालांकि भारत में औद्योगिकरण का विकास एक जैसा नहीं था। अमीर किसान संगठनों ने गरीब कृषक वर्गों एवं अमीर किसानों के हितों के बीच कोई मतभेद नहीं पाया था। उनका मानना था कि अभावकारी मूल्य अमीर एवं गरीब दोनों किसानों को प्रभावित करता है। यद्यपि संरकारी संगठन इंडिया एवं भारत को छुपाता है। भारतीय किसान यूनियन इन दोनों के बीच भाईचारा कायम करने की कोशिश करता है।

भारत में अमीर किसानों का आन्दोलन भी वर्तमान में सही साबित हो रहा है। कोई भी राजनीतिक दल इनको नाराज करने की हिम्मत नहीं कर सकता। सरकार द्वारा लिए निर्णय

का इन लोगों ने भारी विरोध किया चाहे वह किसानों के लिए बढ़े हुए बिजली के दाम हो, खाद के दामों में बढ़ोतरी हो या अन्य कोई जन विरोधी निर्णय हो। कभी–कभी वे आवश्यक वस्तुओं सप्लाई पर भी रोक लगाते हैं, जैसे, प्याज, चीनी, दूध इत्यादि ताकि उनकी माँगों को मान लिया जाये। एक बात माननी पड़ेगी कि इन वर्गों की शक्ति में काफी वृद्धि हुई है। वे न केवल भूमि पर नियंत्रण रखते है, बल्कि वे जिला पंचायत, जैसे संस्थाओं में भी अपना नियंत्रण रखते हैं। इसके अलावा वे शैक्षिक संस्थाओं, बैंक, इत्यादि में भी अपना प्रभुत्व रखते हैं ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी स्थिति मजबूत बना सके। अमीर किसानों की आय का श्रोत काफी विविधता वाला है। कुछ आय उनकी बाहरी श्रोतों से आती है विशेषकर कृषि क्षेत्र के अलावा, जैसें शहरों में रोजगार के जरिये, किराया, कर्ज देना, तथा पर्यटन इत्यादि। वे लघु उद्योगों में भी निवेश कर रहे हैं जैसे कि, चीनी मिल, चावल मिल तथा खाद्य प्रोसेसिंग इत्यादि।

12.4 किसान एवं मजदूर आंदोलन पर उदारीकरण का प्रभाव

आर्थिक सुधारों की शुरूआत 1990 के दशक से हुई थी। ये सुधार उदारीकरण के रूप में जाने जाते हैं। आर्थिक सुधारों का काल या युग पी. वी. नरसिम्हा राव की सरकार के समय से शुरू हुआ था। इसके बाद सभी सरकारों ने इसे जारी रखा था। वाजपेयी सरकार भी इसी एजेन्डें पर कायम थी। नई आर्थिक नीतियों का मुख्य उद्देश्य बीमार एवं घाटे में चल रही लोक उद्यमों को बद करना, पब्लिक सेक्टर (सार्वजनिक क्षेत्र) उद्यमों का निजीकरण एवं विनिवेश था। 1980 की तुलना में 1990 में, संगठित क्षेत्रों के रोजगार में काफी गिरावाट आई थी। वास्तव में यह काल बेरोजगारी का काल था। नौकरियों से संबंधित जॉब सुरक्षा कानूनों में भी बदलाव किया गया। कई मजदूरों को जबरन नौकरी से हटाया गया एवं उन्हें सेवानिवृत्ति योजना के तहत् पद से हटाया गया। ठेकेदारी प्रथा तथा दैनिक मजदूर योजना को बढ़ावा दिया गया। कई जगह पर ट्रेड यूनियन हड़ताल हुई इनके खिलाफ, विशेषकर स्टेट विद्युत बोर्ड, आई.टी.डी.सी. होटल, बैंक इत्यादि क्षेत्रों में हड़ताल हुई। 1992 में राष्ट्रीय नवीनीकरण फंड का सृजन किया गया, ताकि सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जा सके मजदूरों को एवं बेरोजगारों को।

1994 में, भारत ने गैट समझौतों पर हस्ताक्षर किये थे। इसके बाद भारत भी विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बन गया था। भारत का यह कदम सरकार की नई आर्थिक नीतियों के हिस्से के रूप में देखा जाने लगा था। गैट की शर्तों के मुताबिक, विकासशील देश जिसमें भारत भी शामिल है वे सब्सिडी–अनुशासन के दायरे में आते हैं। इन देशों को कहा गया कि, वे किसानों को मात्र दस प्रतिशत की सब्सिडी प्रदान करें। लेकिन सब्सिडी में कटौती करना बहुत मुश्किल है क्योंकि कोई भी सरकार किसानों को नाराज नहीं करना चाहती। वे सिंचाई, बिजली एवं अन्य वस्तुओं को या तो मुफ्त रखना चाहते हैं या फिर कम दाम पर रखना चाहते हैं। गैट समझौते संबंधित एक अन्य समस्या यह भी है कि किसानों के लिए कृषि में पेटेंट कानून लागू किया गया है। किसानों को किसी भी प्रकार के बीज का इस्तेमाल करने की इजाजत नहीं थी। इसके लिये उसे या तो मुआवजा राशि अदा करनी पड़ेगी या उसे इसकी इजाजत लेनी पड़ेगी। जैसा कि ज्ञात है सभी बीज उत्पादन करने वाली कंपनिया मल्टी नेशनल कंपनियाँ है, उनका मुख्य मकसद ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना है। इससे किसानों के पास कोई विकल्प नहीं बचा सिवाय दुबारा बीज खरीदने के। कर्नाटक के किसानों ने कारगिल बीज के खिलाफ अपना विरोध जताया तथा फार्म पर हमला किया, अपना विरोध दर्ज करने के लिये। महाराष्ट्र एवं गुजरात के किसान भी इसी तरह का विरोध जता रहे हैं। अमीर किसानों का आंदोलन नई–आर्थिक नीतियों एवं, विश्व व्यापार संगठन के प्रति नरम रूख अपना रहा है। शरद जोशी ने पश्चिम भाग में नये

घटनाक्रम का समर्थन किया है, जबकि महेन्द्र सिंह टिकैत एवं माजून्दा स्वामी ने दक्षिण एवं उत्तर–भारत में इसका विरोध किया है।

अभ्यास प्रश्न 3

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) प्रमुख किसान संगठनों एवं उनके प्रमुख नेताओं की पहचान कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) अमीर किसान आन्दोलन की प्रमुख माँगें क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) नई आर्थिक नीतियों का मजदूरों पर क्या प्रभाव पड़ा है?

.....

.....

.....

.....

12.5 सारांश

इस इकाई में आपने भारत में किसान एवं मजदूरों के सामूहिक आंदोलन के बारे में अध्ययन किया है। ये वर्ग औपनिवेशिक काल से ही विरोध करते आ रहे हैं अपनी समस्याओं को दूर करने के लिये। उन्होंने अपने संगठनों का गठन किया तथा अपना नेतृत्व तैयार किया। मजदूरों की समस्याऐं मुख्यतः मजदूरी, बोनस, कर्मी, छुट्टी तथा काम के घंटे, हिंसा एवं अनुशासन, औद्योगिक एवं श्रम नीतियों इत्यादि है। किसान भी कोई अलग वर्ग नहीं है। गरीब एवं छोटे किसान अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से परेशान हैं। कुछ अन्य किसान है, जैसे अमीर किसान, कुलक या पूँजीपति किसान, ये सब संगठित होकर अपने–अपने मुद्दों को उठा रहे है। 1970 का दशक मजदूरों एवं किसानों के आंदोलन का समय माना जाता है। इस काल में विभिन्न संगठन उभर कर सामने आये तथा इनका किसी राजनीतिक पार्टी के साथ कोई संबंध नहीं था। किसान एवं मजदूर आंदोलनों ने भारत की राजनीतिक परिदशा के मूलभूत रूप से प्रभावित किया है।

12.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गैल ओम्वेट, (1993), *रिइनेवंटिंग रेवल्यूशन : न्यू सोशल मूवमेंटस एंड सोशलिस्ट ट्रेडिशन इन इंडिया,* एम. ई. साप्रे, आरमोंक.

बर्क, बर्बरा, (1992), *क्लास, स्टेट एंड डेवेल्पमेंट इन इंडिया,* सेज प्रकाशन नई दिल्ली।

बर्धन, प्रणब, (1998), *पोलिटिकल इकानोमी ऑफ डवलपेमंट इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

शाह, घनस्याम (1990), *सोशल मूवमेंटस इन इंडिया,* सेज प्रकाशन नई दिल्ली।

हसन, जोया (2000), *पोलिटिक्स एंड स्टेट इन इंडिया,* सेज प्रकाशन, दिल्ली।

सिंह, जगपाल (1992), *कैपिट्लिज्म एंड डिपेंडेंस : अग्ररेरियन पोलिटिक्स इन वेस्टर्न उत्तर प्रदेश,* (1957–1991) पाठ्यक्रम, 5, मनोहर, नई दिल्ली, 1992।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) मजदूर आंदोलन में प्रमुख मुद्दे इस प्रकार थे, मजदूरी, बोनस, कर्मी, छुट्टी एवं काम के घंटे, हिंसा एवं अनुशासन, औद्योगिक एवं श्रम नीतियाँ इत्यादि।

2) गैर–राजनीतिक ट्रेड यूनियन आंदोलन इसलिए उभरा क्योंकि मजदूर उन संगठनों से असंतुष्ट थे जिनका संबंध राजनीतिक पार्टियों से था।

3) ट्रेड यूनियनों की निम्न कमियाँ हैं :– उनका संगठन कमजोर है तथा वे भारत के छोटे वर्गों तक ही सीमित है। धन की कमी, बाहरी लोगों का नेतृत्व और संगठन पर नियंत्रण, गुटबाजी इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न 2

1) उनका एक खास वर्ग द्वारा शोषण होता था, उदाहरण के लिए जमींदार एवं उनके एजेन्टों द्वारा, साहूकारों तथा औपनिवेशिक शासन के अफसरों द्वारा। जमींदारों के किसानों पर लगातार शुल्क बढ़ाया, उनसे बेगार करवायी तथा जबरन उपहार लिये। वे साहूकारों के भारी कर्ज के बोझ तले आ गये क्योंकि उन्हें अपनी जरूरतों को पूरा करना था। जब किसान कर्ज चुकाने की स्थिति में नहीं थे तो उन्हें उनकी जमीन से बेदखल किया गया। उन्हें शारीरिक तौर पर भी प्रताड़ना दी गयी।

2) तेंलगाना आंदोलन 1946 में शुरू हुआ था, यह निजाम के शासन में हैदराबाद में शुरू हुआ था। यह जागीरदारों के खिलाफ कर वसूली के विरूद्ध आंदोलन था। शुरू में इस आंदोलन का नेतृत्व का अमीर किसानों के हाथों में था, तथा आंदोलन की दिषा प्रमुख रूप से निजामशाही की तरफ थी। लेकिन जल्दी ही इसका नेतृत्व गरीब किसानों के हाथों में आ गया। इसके बाद जमींदारों की भूमि पर कब्जा कर लिया तथा उसे गरीब किसानों में बाँट दी गयी। 1947 के आसपास इस आंदोलन ने गुरिल्ला आर्मी का गठन किया जिसमें गरीब किसानों के लामबंद किया गया जो आदिवासी एवं अछूत थे। इस सेना ने जमींदारों से बड़ी मात्रा में हथियार छीने तथा सरकारी कर्मचारियों को बाहर खदेड़ दिया था। उन्होंने 15000 कि.मी. क्षेत्र को अपने कब्जे में ले लिया था जिसमें

करीब 40,000 जनसंख्या थी। इन क्षेत्रों के प्रशासन को मजदूरों ने चलाया था। 1951 में भारतीय सेना ने तेंलगाना आंदोलन को कुचल दिया था।

3) नक्सलबाड़ी आंदोलन, उत्तरी बंगाल के नक्सलबाड़ी क्षेत्र में शुरू हुआ था। इसका निशाना जमींदार एवं राज्य की एजेंसियाँ थी आंदोलन हिंसा के सिद्धांत पर आधारित था। इसका प्रभाव अन्ये राज्यों जैसे आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, एवं बिहार पर भी पड़ा था।

अभ्यास प्रश्न 3

1) प्रमुख किसान संगठन, दो थे, भारतीय किसान यूनियन उत्तर प्रदेश में, तथा पंजाब में, जिसका नेतृत्व महेन्द्र सिंह टिकैत एवं भूपेन्द्र सिंह मान ने किया था। दूसरा शेतकारी संगठन महाराष्ट्र में जिसका नेतृत्व शरद जोशी ने किया। कर्नाटक में भी कर्नाटक राज्य रायथा संघ, जिसका नेतृत्व नन्युनदसा स्वामी ने किया, खादभुत समाज गुजरात एवं वीबसयीगल संगम तमिलनाडु में।

2) उनकी प्रमुख माँगें थी, मूल्यों के कमी, सब्सिडी देना, कर्जा माफ करना, बिजली के बिल कम करना, पानी के चार्ज कम करना तथा कृषि मूल्य आयोग में किसानों को प्रतिनिधित्व देना। महाराष्ट्र के अलावा इन आंदोलनों के छोटे उत्पादकों की समस्याओं को नहीं उठाया। हालांकि टिकैत ने भूमि अधिग्रहण कानून को खत्म करने एवं न्यूनतम मजदूरी कानून को समाप्त करने की माँग की।

3) नई आर्थिक नीतियों का मजदूरों पर इस प्रकार प्रभाव पड़ा, उनकी आर्थिक हालात कमजोर हो गयी, निजीकरण को बढ़ावा दिया गया, मजदूरों की छंटनी हो गयी एवं उन्हें स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति दी गयी।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY